आधुनिक संगीतज्ञ

लेखक

रवीन्द्र नाथ पारीक

प्रकाशक

एम० एन० पारीक

पुराना बैहराना

इलाहाबाद

आधुनिक संगीतज्ञ

(संगीत शास्त्र के इतिहास में प्रथम पुस्तक)

शास्त्रीय संगीत के गायन, वादन तथा नृत्य के
श्रेष्ठ कलाकारों का जीवन-परिचय,
स्वभाव और विचार

लेखक
रवीन्द्र नाथ पारीक

प्रथम संस्करण] सन १९५४ [मूल्य ३।)
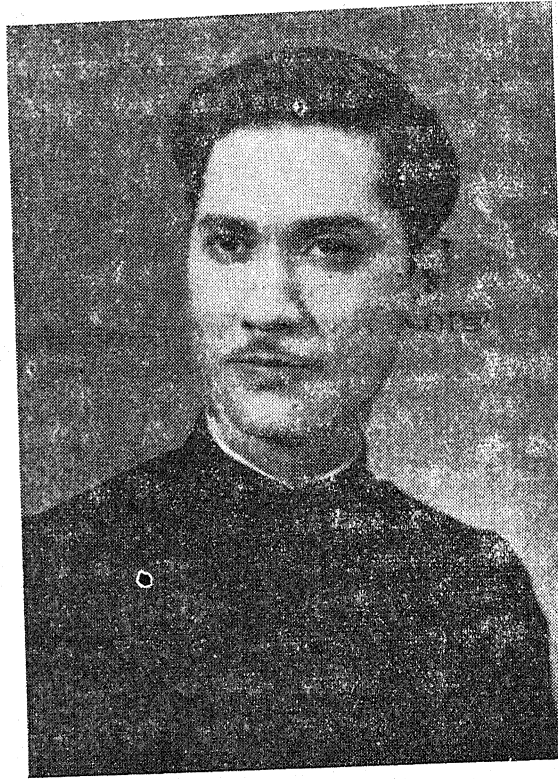
लेखक

आशीर्वाद

श्री रवीन्द्र नाथ पारीक ने आधुनिक संगीतज्ञों की जीवनियाँ लिख कर एक महान कार्य किया है। इस पुस्तक से संगीतशास्त्र की एक बड़ी कमी पूरी हो जायगी।

मैं इन्हें आशीर्वाद देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि इस पुस्तक को सभी पसन्द करेंगे।

अलाउद्दीनखाँ
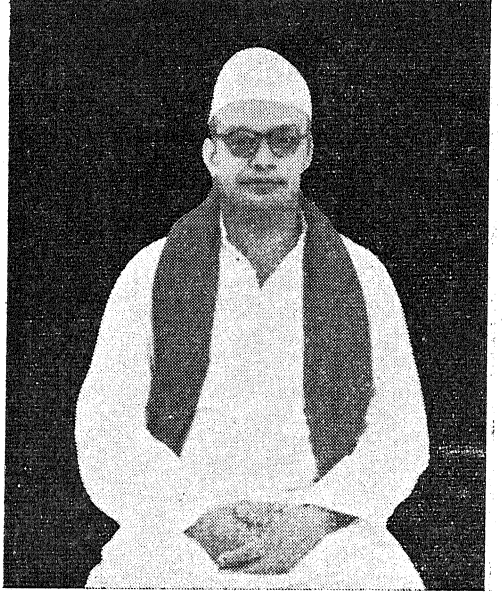
पं० जगदीश नारायण पाठक,

एम० म्यूज़०

रजिस्ट्रार,

प्रयाग संगीत समीति,

इलाहाबाद।

भूमिका

संगीत शास्त्र के अध्ययन में संगीत कलाकारों के व्यक्तित्व के व्यक्तिगत जीवन का भी अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। कला प्रदर्शन में कलाकारों के व्यक्तित्व की छाया रहती है। यही उनकी मौलिकता का परिचय देती है। इसलिये कलाकारों के जीवन वृत्तों तथा उनके विकास की पृष्ठ भूमि का यथेष्ट अध्ययन किये बिना हमारे शास्त्रीय संगीत का अध्ययन अपूर्ण रह जाता है।

वर्त्तमान युग में संगीत शास्त्र सम्बन्धी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, किन्तु संगीतज्ञों की जीवनियों पर लिखी पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। प्राचीन युग की भी कोई ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं है, जिसमें संगीतज्ञों के जीवन वृत्त का वर्णनन हो। यही कारण है कि तानसेन, बैजूबावरा तथा स्वामी हरिदास जी आदि महान् संगीतज्ञों के सम्बन्ध में हमें जानकारी नहीं है और प्रचिलित दन्त कथाओं पर ही हमें निर्भर रहना पड़ता है। यदि वर्त्तमान युग के संगीतज्ञों की जीवनियों पर प्रामाणिक पुस्तक न लिखी जाय तो कुछ समय के पश्चात् इन संगीतज्ञों के विषय में भी भ्रमात्मक दन्त कथायें प्रचिलित हो जायेंगी।

इस पुस्तक के लेखक श्री रवीन्द्रनाथ पारीक ने इस अभाव को देखकर अत्यन्त परिश्रम एवं उत्साह के साथ संगीत के प्रत्येक क्षेत्र के कलाकारों से अपना निकट सम्बन्ध स्थापित कर, उनके जीवन के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करके इस पुस्तक की रचना की। इस प्रकार उन्होंने संगीत शास्त्र तथा कला के विकास क्रम में एक बड़े अभाव की पूर्त्ति की है। इसके लिये श्री पारीक को मैं साधुवाद देता हूँ।

इस पुस्तक को मैंने आदि से अन्त तक पढ़ा है। लेखक ने

बड़े ही रोचक ढंग से संगीतज्ञों की जीवनियाँ लिखी हैं। उसने केवल संगीतज्ञों के व्यक्तित्व का अध्ययन करके ही संतोष नहीं किया है, अपितु उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनायें, वातावरण जिनमें उनका पालन-पोषण हुआ तथा उन कठिनाइयों का जिनको सहन करके इन्होंने संगीत का अभ्यास किया बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

प्रत्येक संगीतज्ञ का स्वभाव, उदारता तथा विचार लिखकर लेखक ने पाठकों को उनके निजी जीवन से अवगत कराने के लिये पूर्ण प्रयास किया है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें गायन, वादन तथा नृत्य के प्रथम श्रेणी के कलाकारों का जीवन परिचय दिया गया है। श्री पारीक ने प्रत्येक संगीतज्ञ का आकर्षक चित्र देकर और सुन्दर ढंग से अच्छे कागज़ पर मुद्रित करा के इस पुस्तक को बहुत ही उपयोगी बना दिया है।

यह पुस्तक संगीत के प्रत्येक क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा संगीत प्रेमियों के लिये तो उपयोगी है ही साथ ही महीला विद्यापीठ की विदुषी परीक्षा के छात्राओं के लिये भी लाभदायक हो सकती है, जिसमें उन्हें वर्त्तमान युग के संगीतज्ञों के विषय में जानकारी रखना आवश्यक है।

इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि इस पुस्तक के लिखने में श्री पारीक को घोर परिश्रम और पर्याप्त धन व्यय करना पड़ा है। श्री पारीक इस उत्साह और संलग्नता के लिये प्रशंसा के पात्र हैं। मेरी शुभकामनायें इनके साथ हैं।

जगदीश नारायण पाठक,

एम० म्युज़०

शुभ कामना

संगीत तथा साहित्य का दामन चोली का साथ है। मैंने उस्ताद फैयाज खाँ, डाक्टर अलाउद्दीन खाँ, पंडित ओंकार नाथ, श्री कुमार गन्धर्व आदि को कुछ निकट से देखा और जाना है। श्री जयशंकर प्रसाद श्री सूर्य कान्त त्रिपाठी 'निराला', सुश्री महादेवी वर्मा, पंडित सुमित्रा नन्दन पन्त आदि का सन्निध्य प्राप्त करने का भी अवसर मुझे मिला है। मैं इन महानुभावों को सफल तपस्वी, साधक और योगी मानता हूँ। इनकी पूजा मन ही मन करके अपने को धन्य समझता हूँ।

ये लोग 'चना चबैना गंगा जल' के सहारे कला, संगीत, साहित्य की जो सेवा करने आये हैं वह उस स्वर्ण परम्परा की एक शानदार कड़ी है जिस वाल्मीकि से लेकर तानसेन, हरीदास, बैजू बावरा, सूरदास और राजरानी मीरा को भी गिना जा सकता है।

अभिनव भारत अपने इन कलाकारों और साहित्यकारों पर गर्व करता है और उन्हें वही स्थान देता है जो वह अपने राजनीतिक तथा सामाजिक नेताओं को देता आया है। हमारे देश के कोने-कोने में अनेक पाल राब्सन, लियो नार्डो-डा-विन्सी, कीट्स और शेली पड़े हुए है। उन्हें ढूंढ निकालना, उनका सम्मान करना उनकी कला से लाभान्वित होना अभी बाकी है। ज्यों-ज्यों हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों हम अपने कलाकारों और साहित्यकारों का मूल्य भी पहिचानते जाएँगे।

प्रस्तुत पुस्तक एक उदीय मान संगीत प्रेमी तरुण के अथक परिश्रम का फल है। उन्हें किन-किन कठिनाइयों और मुसीबतों का सामना करना पड़ा है इसकी मुझे व्यक्तिगत जानकारी है, परन्तु उनके माथे के श्रम बिन्दु उनकी सफलता के शृंगार बने यह जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। प्रत्येक संगीत प्रेमी व्यक्ति तथा परिवार में यह पुस्तक पहुँचे यही मेरी कामना है।

श्री कृष्णदास

साहित्य सम्पादक, अमृत पत्रिका।

पुस्तक की कहानी

दिसम्बर सन् १९५२ में प्रयाग सङ्गीत समिति में एक विराट संगीत सम्मैलन हुआ था जिसमें अनेक उच्चकोटि के संगीतज्ञ भाग लेने आये थे।

एक दिन रात्रि को मैं उस्ताद हाफ़िज़ अली खाँ से भेंट करने के लिये गया। खाँ साहब ने बड़े प्रेम के साथ मुझे बैठाया। इधर-उधर की बातों के पश्चात् मैंने खाँ साहब की जीवनी और 'सरोद' के उद्भव और विकास के विषय में जानना चाहा। खाँ साहब ने बड़ी प्रसन्नता से सभी बातें बतलायीं।

घर पर आकर मैं समाचार पत्र के पन्ने उलट रहा था कि एकाएक किसी अभिनेता की जीवनी देखकर मेरी निगाह वहीं रुक गई। उसी समय मुझे हाफिज़ अली खाँ साहब का स्मरण हो आया और मैं उनके महान व्यक्तित्व के विषय में सोचने लगा। यदि अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की जीवनियों के स्थान पर समाचार पत्रों में हमारे देश के महान् सङ्गीतज्ञों की जीवनियाँ प्रकाशित हों तो कितना सुन्दर हो, यह विचार मेरे हृदय में उठा। तुरन्त ही मैंने खाँ साहब के विषय में एक लेख तैयार किया और प्रातःकाल ही भारत के सम्पादक, श्री शंकर दयालु श्रीवास्तव को दिखलाया। श्रीवास्तव जी भी खाँ साहब का कार्यक्रम सुनकर बहुत प्रभावित हुए थे और मेरा लेख देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन उस लेख को "भारत" में प्रकाशित देखकर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा और मैंने यह सङ्कल्प किया कि मैं भारत के सभी संगीतज्ञों से मिलकर उनकी जीवनी ही नहीं बल्कि उनके वंशज, तथा उनके विचार के विषय में भी पता लगाऊँगा।

इसके पश्चात् मैं काशी के सुप्रसिद्ध तबलावादक पं० श्यामता प्रसाद (गुदई महाराज) से मिला और उनके विषय में एक लेख तैयार किया। मेरे मित्र श्री छेदीलाल जी द्वारा मेरा परिचय अमृत पत्रिका के समाचार सम्पादक श्री पन्नालाल श्रीवास्तव से हुआ। पन्नालाल जी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मुझे अवश्वासन दिया कि वह न केवल उसी लेख को प्रकाशित करेगें बल्कि भविष्य में भी इस प्रकार के लेख प्रकाशित करते रहेंगे।

बाद में मेरा परिचय अमृत पत्रिका के साहित्य सम्पादक, श्री श्रीकृष्ण दास से हुआ जिन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिलाया और लेखों को आकर्षित बनाने का ढंग भी बतलाया।

इसी बीच में मेरा परिचय "लीडर" के श्री निर्मलकुमार तथा श्री जीतेन्द्रसिह जी से हुआ जिन्होंने "लीडर" में मेरें लेख प्रकाशित करके मुझे और भी प्रोत्साहित किया।

संगीतज्ञों से भेंट करने के लिए मैं काशी, दिल्ली, रामपुर, लखनऊ, मेरठ बम्बई आदि गया और उनसे मिलकर सभी बातों का पता लगा कर लेख तैयार किये।

मार्ग में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किसी-किसी संगीतज्ञ से भेंट करने के लिए मुझे एक शहर अनेक बार जाना पड़ा। मुझे विभिन्न स्वभाव के संगीतज्ञों से मिलने पर बहुत से अनुभव हुए। किसी ने बालक समझकर मुझे अपनी जीवनी लिखवाना पसन्द नहीं किया और किसी ने अपना अमूल्य समय देकर मुझे सभी बातें लिखवाईं।

मेरा उत्साह देखकर संगीतज्ञ भी धीरे धीरे प्रभावित होने लगे और वे सब मुझे अपने पुत्र अथवा छोटे भाई की तरह समझने लगे।

अब इन लेखों को संशोधित तथा परिवर्द्धित करके विज्ञ पाठकों तथा संगीत प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है इस पुस्तक का स्वागत होगा और मेरा परिश्रम सफल होगा।

संगीत कला तथा संगीतकारों की जो स्थिति स्वाधीनता प्राप्ति के पहिले थी, वह अब नहीं है। अब समय बदल गया है। संगीत विद्या और संगीतज्ञों को धीरे-धीरे अपना सहज स्थान प्राप्त होता जा रहा है। उनका जो प्राप्य है वह उन्हें मिले यह उचित ही है। इसी में देश का कल्याण है, इसी में हमारे सामाजिक जीवन का विकास भी निहित है। आज धीरे-धीरे नव जागरण की जो लहरियाँ हमारे समाज को आलोड़ित कर रही हैं उन्हें इस पुस्तक से थोड़ी बहुत शक्ति अवश्य प्राप्त होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

पूज्य पंडित जगदीशनारायण पाठक, आचार्य कुशालकर जी आदि सभी गुरुजनों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि इनके आशीर्वाद से पुस्तक का अगला संस्करण आकार-प्रकार तथा विषय वस्तु की दृष्टि से और भी अधिक उपयोगी तथा आकर्षक होगा।

मैं श्री महेशनारायण सक्सेना, श्री वी० एन० ठकार, श्री एस० डी० आप्टे, श्री यू० एस० "जानकार", प्रोफेसर लालजी, आदि संगीतज्ञों का आभारी हूँ जो मुझे सदैव प्रोत्साहित करते रहते हैं।

साथ ही साथ मैं श्रीयुक्त रामकृष्ण जौहरी 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' को सादर धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन एवं मुद्रण में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

रवीन्द्रनाथ पारीक

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ

रामपुर रियासत के दरबारी संगीतज्ञ उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ की गणना भारत के श्रेष्ठ कलाकारों में की जाती है। खाँ साहब "संगीत भूषण" "फक्रे मौसीकी" "शेरे मौसीकी" आदि उपाधियों से अलंकृत हैं। सन् १९५० में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आपको सम्मानित करके १०००), एक पदक एक काश्मीरी शाल तथा प्रमाणपत्र भी प्रदान किया है। यही नहीं विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भी इन्हें अनेक प्रमाण-पत्र तथा अमूल्य पुरस्कार प्रदान किये गये हैं।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ

इनका जन्म बदायूँ जिले के सहसवान नामक ग्राम में हुआ था। इनके वंशज आदि काल से उच्चकोटि के संगीतज्ञ होते आये हैं। इन्होंने संगीत की शिक्षा तानसेन तथा अदारंग-सदारंग की सन्तानों से प्राप्त की थी। उस्ताद मुश्ताक हुसेन के पिता खाँ साहब कल्लन खाँ की गणना सिद्ध गायकों में की जाती थी। उन्हीं के द्वारा इन्होंने ८ वर्ष की अवस्था से संगीत की शिक्षा लेना प्रारंभ किया था। ३५ वर्ष की अवस्था तक वे सतत् परिश्रम और लगन के साथ उन्हीं से सीखते रहे। किन्तु

अभाग्यवश उनका देहान्त हो जाने से यह उनसे पूर्ण रूप से विद्या न प्राप्त कर सके।

पिता के देहान्त होने के पश्चात इन्होंने अपने भाई उस्ताद इम्दाद हुसेन खाँ, जो संगीताचार्य उस्ताद हद्दू खाँ के शिष्य थे, शिक्षा लेना प्रारंभ किया। इनसे उन्होंने पर्याप्त समय तक सीखा, फिर यह उस्ताद महबूब खाँ, जो "गायक और नायक' कहलाते थे और जिन्होंने तानसेन के वंशजों से शिक्षा प्राप्त की थी, सीखने लगे। उनके छोटे भाई पुत्तन खाँ, तथा अपने ससुर उस्ताद हैदर अली खाँ साहब से भी संगीत की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की। अन्त में यह उस्ताद इनायत हुसेन खाँ के, जो नेपाल रियासत में दरबारी गायक थे, शिष्य हो गये। उस्ताद इनायत हुसेन उस समय अपने अनुपम गायन के लिये प्रसिद्ध थे। यह उस्ताद बहादुर हुसेन खाँ, जो तानसेन की औलादों में से थे, के शिष्य थे। इनके गायन पर मुग्ध होकर ग्वालियर के हद्दू खाँ ने अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया था।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन ने इनायत खाँ साहब के साथ नेपाल दरबार में रहकर लगन और परिश्रम से शिक्षा प्राप्त की। इनायत हुसेन इनसे बहुत स्नेह रखते थे और कठिन से कठिन बन्दिशों को भी इन्हें सिखाने में कमी नहीं रखते थे। नवाब रामपुर ने उस्ताद इनायत हुसेन खाँ को अपने दरबारी गायक के पद के लिये आमंत्रित किया। ३ वर्ष रामपुर दरबार में रहने के पश्चात् यह हैदराबाद दरबार में चले गये और उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ को भी अपने साथ ले गये।

उस्ताद इनायत हुसेन खाँ के नेतृत्व में रहकर मुश्ताक हुसेन खाँ साहब ने गायन क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति की। इनके गायन की प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी। नवाब रामपुर ने

तुरन्त ही इन्हें अपने दरबारी गायक का पद प्रदान किया। लगभग ३५ वर्षों से यह उसी पद पर विराजमान हैं।

रामपुर दरबार में इनका परिचय तानसेन के वंशज, उस्ताद वज़ीर खाँ से हो गया, उनसे इन्होंने होली, ध्रुपद तथा धमार की शिक्षा प्राप्त की।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ को भारत वर्ष के सभी बड़े संगीत सम्मेलनों में भाग लेने का गौरव प्राप्त है। विभिन्न आकाशवाणियों से यह अपने कार्यक्रम के लिये आमंत्रित किये जाते हैं।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ की गायिकी में अदारंग-सदारंग, तानसेन तथा हद्दू खाँ की सन्तानों की गायिकी का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि यह संगीत के प्रत्येक क्षेत्र की गायिकी पर अपना पूर्ण अधिकार रखते हैं, परन्तु ख्याल गायन में इन्होंने दक्षता प्राप्त की है और इसीलिये यह "ख्यालिये" के नाम से विख्यात हैं।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ ने अनेक विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करके उन्हें सुविख्यात कलाकर बना दिया है। आकाशवाणी लखनऊ के "ठुमरी" "गज़ल" और "ख्याल" गायक मुर्जाह्द नियाजी, कानपुर के विख्यात सारंगी वादक, उस्ताद गुलाम ज़ाफर, तथा ध्रुपद धमार के गायक उस्ताद अश्फाक हुसेन खाँ इनके प्रमुख शिष्यों में से हैं। इनके बड़े पुत्र इशताख हुसेन खाँ, जो १५-२० वर्ष से रामपुर में दरबारी गायक भी हैं, उनको इन्होंने पर्याप्त शिक्षा भी प्रदान की है। छोटे पुत्र इसहाक हुसेन खाँ, गायन के अतिरिक्त सभी वाद्ययन्त्रों के बजाने में भी निपुण हैं।

उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ अत्यन्त विनम्र स्वभाव के व्यक्ति हैं। यद्यपि इनसे यह मेरी पहली ही मुलाकात थी परन्तु कुछ ही

घन्टों की बातचीत में हम एक दूसरे के कितने निकट आ गये थे, यह लिखना कठिन है। उन्होंने मुझे प्राचीन संगीतज्ञों के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें बतलाईं उस्ताद मुश्ताक हुसेन खाँ ने दुख प्रगट करते हुए कहा कि भारत में कोई भी ऐसी पुस्तक उपलब्ध नहीं है, जिसके द्वारा हम प्राचीन संगीतज्ञों की जीवनी के विषय में जान कर लाभ उठा सकें।

पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर

पं० ओंकार नाथ ठाकुर संगीत के उन सिद्ध कलाकारों में से हैं, जो अपने अनुपम गायन एवं संगीत साधना के लिए विदेशों में भी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इनके गायन में जो सरसता, मधुरता एवं आकर्षण है वह अन्यत्र नहीं है।

गत वर्ष पंडित जी अपनी गायन कला के प्रदर्शन के लिये अफगानिस्तान के बादशाह द्वारा आमंत्रित किये गये थे। वहाँ पर इनका अत्यधिक सम्मान किया गया और इन्हें वहाँ की सर्वोच्च कलाकार की उपाधि "मौसीकी" भी प्रदान की गई।

पं० ओंकार नाथ ठाकुर

पं० ओंकार नाथ जी का जन्म काठियावाड़ में हुआ था। इनके पिता श्री गौरीशंकर, ईश्वर के अनन्य भक्त थे। अतः इनका लालन पालन ऐसे वातावरण में हुआ, जहाँ इन्हें प्रातः काल से रात्रि तक ईश्वरोपासना में सुन्दरर सुन्द भजन सुनने को मिलते थे। फलतः पंडित जी की अभिरुचि भजनों की ओर बाल्यावस्था से ही आकर्षित हो गई थी। आजकल पंडित जी भजनों के गाने में अद्वितीय समझे जाते हैं, जिसका मूल कारण इनके परिवार का वातावरण है।

केवल १२ वर्ष की अल्पायु ही में यह बड़ी सुन्दरता के साथ भजनों को गाने लगे थे। स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर का ध्यान इस बालक की ओर आकर्षित हुआ, और उन्होंने इन्हें अपना प्रमुख शिष्य बनाकर संगीत की उच्चतम शिक्षा प्रदान की।

केवल २० वर्ष की अवस्था ही में पंडित जी को गन्धर्व महा-विद्यालय लाहौर के आचार्य का पद स्वीकार करना पड़ा। आज-कल यह काशी विश्वविद्यालय के डीन आफ फेकल्टी आफ म्युजिक के पद पर विराजमान हैं।

पं० जी को भारतवर्ष के सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में भाग लेने का गौरव प्राप्त है। लगभग सभी आकाशवाणियों से इनके कार्यक्रम प्रसारित हो चुके हैं।

पंडित जी न केवल एक कुशल संगीतज्ञ ही हैं, अपितु प्रतिभा-शाली चिन्तक तथा विचारक भी हैं। इनका विश्वास है कि शोध और अविष्कार का भण्डार संगीत में छिपा पड़ा है। अतीत काल से सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, प्रभृति भक्तों ने सिद्ध कर दिया है कि बिना तम्बूरे के भव सागर से तरना असम्भव है। तानपूरे में कई विलक्षण शक्तियाँ विद्यमान हैं। शब्द आकाश का गुण है। जितना आकाश विशाल है, नाद (संगीत) भी उतना ही विश्वव्यापी है। नाद की लहरें ही अमेरिका से भी फैलती हुई हमारे कानों तक आती हैं। भगवान कृष्ण के आदेश और उपदेश आज भी अनन्त आकाश में गूँज रहे हैं, हमें उन्हें सुनने की शक्ति चाहिये।

श्रीमती हीराबाई बड़ोदकर

कला के परिवर्धन और परिष्करण में कलाकार का विशेष हाथ रहता है। कलाकार सर्व प्रथम अपनी कलागत विशेषताओं द्वारा कला के सृजन में पूर्ण सहायक होता है। इसके पश्चात उसके क्षेत्र को प्रचार और प्रसार द्वारा व्यापक रूप देने का उत्तरदायी भी कलाकार ही होता है। संगीत के रंगमंच पर ऐसे कलाकार बहुत कम देखने में आते है। पुरुष कलाकारों में तो इस प्रकार की विशेषतायें यत्र तत्र मिल भी जाती हैं किन्तु स्त्री कलाकारों की संख्या पुरुष कलाकारों की अपेक्षा बहुत ही कम है। वर्तमान युग की स्त्री कलाकारों में श्रीमती हीराबाई बड़ोदकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने कला के सृजन के साथ उसके क्षेत्र को व्यापक रूप देने में महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है।

श्रीमती हीराबाई बड़ोदकर

लगभग ५ वर्ष हुए यह अपने भाई सुरेशबाबू तथा अन्य कलाकारों के साथ शास्त्रीय संगीत के प्रचार के लिये अफ्रीका गईं थीं। इसके पूर्व अफ्रीका में चलचित्रीय संगीत को ही लोग अधिक महत्त्व देते थे और शास्त्रीय संगीत से तो एक दम ही अनभिज्ञ

थे। किन्तु इनके शास्त्रीय संगीत के प्रदर्शन से वहाँ की जनता पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसी समय से वहाँ के लोगों में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति अभिरुचि एवं आस्था उत्पन्न हो गई जिसके फलस्वरूप वहाँ भी शास्त्रीय संगीत अँकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित होने लगा।

गत जुलाई मास ही में अखिल विश्व शान्ति सम्मेलन की ओर से श्रीमती हीराबाई अपनी कला प्रदर्शन के लिये चीन भेजी गई थीं। वहाँ उन्होंने अपनी मधुर वाणी से चीन वासियों को मोह लिया।

श्रीमती हीराबाई का जन्म सन् १६०७ में मिरज में हुआ था। इनकी माता श्रीमती ताराबाई, जिनका स्वर्गवास हुए लगभग ७ वर्ष हुए हैं, अपने समय की कुशल गायिका थीं। बाल्यावस्था से ही श्रीमती हीराबाई में संगीत कला का संस्कार विद्यमान था। ३ वर्ष की अवस्था में यह गाना सुन कर खूब प्रसन्न होती थीं। जब कुछ बड़ी हुई तो इनके भाई सुरेशबाबू, जो एक कुशल संगीतज्ञ थे, इन्हें शिक्षा देने लगे। सुरेश बाबू ने लगभग ७ वर्ष तक शिक्षा प्रदान की। वह स्वरों की ओर विशेष ध्यान देते थे। जब तक उनका एक स्वर पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं हो जाता, तब तक दूसरा स्वर नहीं बताते थे। यद्यपि स्वरों को शुद्ध करने में उन्हें पर्याप्त समय व्यय करना पड़ता था और हीराबाई को उस समय यह परिश्रम करना बुरा भी लगता था, किन्तु आज जो उनके कंठ माधुरी की प्रशंसा समस्त भारत में होती है उसका एक मात्र कारण उनके स्वरों का अच्छा होना है। सुरेश बाबू ने इन्हें अधिकतर ख्याल तथा ठुमरी की ही शिक्षा प्रदान की।

श्रीमती हीराबाई को बाल्यवस्था से ही सेन्ट मेरी गर्ल्स कालिज

में प्रवेश करा दिया गया था वहाँ इन्होंने ७ वीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की।

१४ वर्ष की अवस्था से इन्होंने नियमित रूप से तथा अनवरत परिश्रम के साथ संगीत का शिक्षा उस्ताद अब्दुल करीम खाँ साहब से ग्रहण करना प्रारम्भ किया। खाँ साहब ने इन्हें लगभग ४ वर्ष तक सिखाया। १८ वर्ष की अवस्था में ही श्रीमती हीराबाई अपने कोकिल कंठ एवं गायन प्रणाली के कारण सुविख्यात हो गईं।

सर्व प्रथम इन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन गन्धर्व महाविद्यालय पूना में किया, जहाँ भारत के सभी उच्च कोटि के कलाकार उपस्थित थे। यहाँ इन्होंने "राग पटदीप" का "ख्याल" बहुत ही रोचकता के साथ प्रदर्शित किया, जो उपस्थित कलाकारों द्वारा बहुत ही पसन्द किया गया। यहीं से इनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

सन् १९३५ में यह बम्बई रेडियो द्वारा अपनी कला के प्रदर्शन के लिये आमंत्रित की गईं। इनका कार्यक्रम अत्यन्त सफल रहा, इसलिये अन्य रेडियो स्टेशनों पर भी आमंत्रित की गईं। जनवरी १९५३ में श्रीमती हीराबाई को राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिये आमंत्रित किया गया।

आज तक श्रीमती हीराबाई के बहुत से रिकार्ड हिन्दी तथा मराठी में बन चुके हैं। जो प्रायः विभिन्न रेडियो स्टेशनों से लोगों की फरमाइशों से प्रसारित किये जाते हैं। राग तोड़ी में "लंगर कांकरिया" पटदीप में, "पिया नहीं आये" मारवा का "तराना" देशकार में "होली" तिलंग राग में ठुमरी "काहे सताओ मोहे श्याम" तथा "अकेली मत जइयो राधे" मराठी में "मधु मधुरा" आदि।

श्रीमती हीराबाई को अपनी कला का प्रदर्शन रियासतों में भी करने का अवसर प्राप्त हो चुका है। भावनगर, राजकोट, जूनागढ़

आदि रियासतों में इनके कार्यक्रम सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए हैं। मराठी चल-चित्रों में भी इनका अभिनय सफल रहा है। "स्वर्ण मन्दिर" तथा "सन्त चनाबाई" में इनके अभिनय की प्रसंशा दर्शकों ने भूरि-भूरि की ।

सरस्वती रानी तथा कमला बाई इनकी छोटी बहिनें हैं जिनको शिक्षा इन्होंने स्वयं दी है। इनके अतिरिक्त श्रीमती सीता मुल्की, मालती पान्डे, मनकर बाई सरोदकर तथा सुश्री तारा दीक्षित भी हैं जिन्हें इन्होंने संगीत की शिक्षा प्रदान की है ।

श्रीमती हीराबाई की गायिकी किराने घराने की है। इस गायिकी की विशेषता यह है कि इसमें स्वरों की बढ़न्त भली प्रकार तथा कुछ निरालापन लिये होती है। मीरखन्डी पलटों का इसमें रजंकता के साथ प्रयोग होता है, जो हीराबाई बड़ोदकर के गले से अत्यन्त भला मालूम होता है। यह सुरीली इतनी हैं कि जब कभी तार सप्तक के "स" पर रुकती हैं तो ऐसा मालूम होता है कि तानपूरे की आवाज़ और इनका स्वर एक ही हो गया है। किराने घराने की तानें भी कुछ विशेष ढंग की होती हैं जो यह भली प्रकार व्यक्त करती हैं ।

श्रीमती हीराबाई को पूजा-पाठ से विशेष प्रेम है। बातचीत में सरल प्रकृति की हैं। संगीत के विषय में चर्चा करने में इन्हें विशेष आनन्द आता है।

उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली खाँ

बड़े ग़ुलाम अली की गणना संगीत के सिद्ध कलाकारों में की जाती है। इनकी गायन शैली अत्यन्त आकर्षक और रोचक है। अपने गायन से श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर देना, तो इनके लिये साधारण सी बात है।

उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली खाँ

खाँ साहब एक खानदानी संगीतज्ञ हैं। इनके पिता उस्ताद अलीबक्स तथा चाचा खली बक्स अपने समय के प्रसिद्ध कलाकार थे। केवल ७ वर्ष की अल्पायु ही से इनके चाचा जी ने इन्हें संगीत की शिक्षा देना प्रारंभ किया, परन्तु अभाग्य-वश इन्हें शिक्षा अधूरी देकर ही वे स्वर्गवासी हो गये।
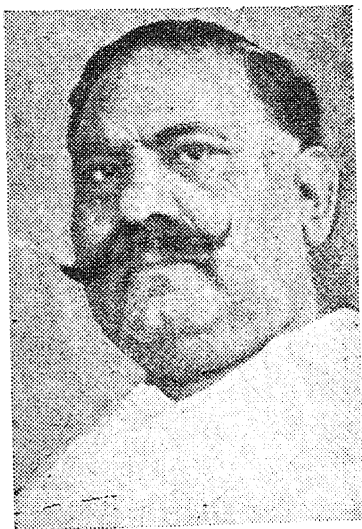
एक दिन बड़े ग़ुलाम अली साहब ने अपने एक मित्र संगीतज्ञ से यह कहते सुना कि तुम्हारे चाचा की मृत्यु से तुम्हारे घर का संगीत का दीपक सदा के लिये बुझ गया है। खाँ साहब के दिल में यह बात तेज़ तीर की भांति घुस गई और उसी दिन से उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने वंश के बुझे दीपक को यह पुनः जलायेंगे।

बड़े ग़ुलाम अली नियमित रूप से संगीत की साधना करने

लगे और घन्टों तक एक साथ गायनाभ्यास प्रारंभ कर दिया। अल्पकाल ही में इन्होंने संगीत के क्षेत्र में असाधारण ख्याति और प्रशंसा प्राप्त कर ली। इनके मित्र ने कहा कि वास्तव में तुमने अपने स्वर्गीय चाचा जी का स्थान इस अल्पावस्था में प्राप्त करके अपने वंश का नाम उज्ज्वल किया है।

खाँ साहब भारत के बड़े-बड़े उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में भाग ले चुके हैं। भारत का विभाजन हो जाने के कारण यह पाकिस्तान चले गये। परन्तु यह लगभग हर साल कलकत्ते के संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते हैं। प्रसन्नता की बात यह है कि खाँ साहब को जब कभी भारत की ओर से संगीत सम्मेलनों का आमंत्रण जाता है, यह अस्वीकार नहीं करते और बड़ी प्रसन्नता से सम्मेलन में भाग लेकर श्रोताओं का मनोरञ्जन करते हैं।

यद्यपि खाँ साहब की गायिकी ख्याल अंग की है, परन्तु ठुमरी गायन में यह अपनी समता नहीं रखते। इन्होंने विभिन्न रागों में विभिन्न ठुमरियों की रचना स्वयं की है जो इनके मुख से बड़ी ही भली मालूम होती हैं।

बड़े ग़ुलाम अली मुँह से बजाने वाले वाद्य यन्त्रों को छोड़कर, सभी वाद्ययंत्रों को बजा लेते हैं। इन्हें "स्वर मंडल" से विशेष प्रेम है।

इनके चार भाई हैं। बरकत अली, मुबारक अली और अमन अली खाँ। ये तीनों संगीतज्ञ हैं इनके चौथे भाई करामत अली व्यापार करते हैं।

इस समय खाँ साहब की अवस्था लगभग ५३ वर्ष की है। यह अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हैं। इनकी बड़ी-बड़ी मूछों से चेहरे पर रोब झलकता है।

श्रीमती रसूलन बाई

श्रीमती रसूलन बाई पूर्वी ढंग की ठुमरी गाने में प्रसिद्ध हैं। इनकी गायन शैली भावपूर्ण और हृष्यग्राही है विशेषतः बोल बनाव में। ठुमरी गायन में बोल बनाव विशेष महत्त्व रखता है। ठुमरी के अतिरिक्त टप्पा, पूर्वी दादरे और लोक गीतों को भी ये बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत करती हैं।

श्रीमती रसूलन बाई

इनका जन्म बड़े मिर्जापुर में हुआ है। बचपन की शिक्षा आपने उस्ताद शम्भू खाँ से प्राप्त की। अभी तक गुरु से शिक्षा प्राप्त करने में श्रीमती रसूलन अपना गौरव समझती हैं। २० वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। विवाह के समय इन्हें शपथ लेनी पड़ी थी कि यह अपनी किसी भी लड़की को गाने बजाने की शिक्षा नहीं देंगी और स्वयं एक गृहस्थ जीवन व्ययतीत करेंगी फलतः इन्होंने अपनी दो पुत्रियों का विवाह बिना किसी शिक्षा के दिये कर दिया।

श्रीमती रसूलन ने ११ वर्ष की अवस्था से संगीत शिक्षा प्रारंभ की थी। अल्पावस्था ही में इन्होंने उन्नति कर ली। सर्व प्रथम इन्होंने अपना गायन कला का प्रदर्शन धरमजय के गढ़े के महाराज

के यहाँ किया। इनका कार्यक्रम अत्यधिक पसंद किया गया और इसकी चर्चा समस्त रियासतों में होने लगी। फलतः कश्मीर, रामपुर, रतलाम, दरभंगा, इन्दौर, रीवा, पन्ना, आदि रियासतों में भी आमंत्रित की गईं।

रियासतों के अतिरिक्त यह भारत के लगभग सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित की जाने लगीं। इन्हें दो बार राष्ट्रीय कार्यक्रम में भाग लेने का गौरव भी प्राप्त है।

श्रीमती रसूलन सात आठ वर्षों से अस्वस्थ हैं। डाक्टरों के परामर्श के विरुद्ध भी आप गाना नहीं छोड़ती। इनका कथन है "संगीत में ही मेरे प्राण हैं। जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर बेकार है, उसी तरह बिना संगीत के मेरा जीवन बेकार है। मैं अन्न और जल छोड़ सकती हूँ, परन्तु संगीत को नहीं।"

श्रीमती रसूलन शिष्ट-सुसभ्य महिला हैं। आपकी सहृदयता और संस्कृति प्रेम प्रसिद्ध है। आपके आचार-विचार और व्यवहारों से सभी लोग शीघ्र ही प्रभावित हो जाते हैं। संगीत कला आपके जीवन का प्रधान अंग है। आप अपने जीवन का शेष भाग इसी कला की सेवा में व्यतीत करना चाहती हैं।

उस्ताद अमीर खाँ

उस्ताद अमीर खाँ ने संगीत की शिक्षा अपने पिता उस्ताद शाहमीर खाँ द्वारा १० वर्ष की अवस्था से ही प्राप्त करना प्रारंभ कर दी थी। इनके पिता कुशल संगीतज्ञ थे। वे सारङ्गी बजाने में दक्ष थे। परन्तु उन्होंने वीणा वादन में भी ख्याति प्राप्त की थी। उन्होंने ही सारङ्गी की शिक्षा उस्ताद अलादिया खाँ तथा उस्ताद मुनीर खाँ को प्रदान करके चोटी का कलाकार बना दिया।

उस्ताद अमीर खाँ

अमीर खाँ के वंशज अन्तिम मुग़ल सम्राट शाह ज़फ़र के दरबारी सङ्गीतज्ञ थे, किन्तु कुछ समय से इनका घराना इन्दौर में जाकर बस गया था। इनके पिता इन्हें २४ घंटों में केवल ३ घंटा ही शिक्षा प्रदान करते थे। १ घंटा प्रातःकाल, १ घंटा दोपहर और १ घंटा रात्रि को। प्रत्येक शुक्रवार को इन्हीं के घर संगीत के कार्यक्रम का विशेष आयोजन किया जाता था, जहाँ बालक अमीर खाँ को अपनी कला प्रदर्शन का अवसर मिलता था।

केवल १६ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने ५,०४० तानें जो इन्हें "संगीत रत्नाकर" नामक पुस्तक से उपलब्ध हो सकीं कंठाग्र

कर लीं और कुछ विशेष तानों को इन्होंने अपनी गायिकी में सम्मिलित करके अपनी गायन शैली को एक सुन्दर रूप दिया।

२५ वर्ष की अवस्था में उस्ताद अमीर खाँ ने संगीत के रंगमंच पर प्रवेश करके अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में यह आमंत्रित किये जाने लगे और विभिन्न आकाशवाणियों द्वारा इनके कार्यक्रम प्रसारित होने लगे। इन्हें रियासतों में भी विशेष सम्मान मिला। कुछ ही समय हुआ यह अपनी गायन कला प्रदर्शन के लिये अफगानिस्तान के बादशाह द्वारा भी आमंत्रित किये गये थे, जहाँ इनका अत्यधिक सम्मान किया गया।

उस्ताद अमीर खाँ के साथ सारंगी की संगत बिलकुल अनउपयुक्त दिखाई पड़ती है, क्योंकि यह स्वरों का प्रदर्शन अपने हृदय से करते हैं, अतः सारंगी के स्वर इनके गायन में बाधा उपस्थित करते हैं। यह तबले पर भी सीधा ठेका पसन्द करते हैं, क्योंकि यह "ख्यालिये" हैं। "ख्याल" शब्द का अर्थ है "कल्पना," खाँ साहब की गायिकी में स्वरों के समुदाय में नवीन और निरालेपन का प्रयोग का होने के कारण सीधा ठेका ही उपयुक्त होता है।

उस्ताद अमीर खाँ वर्त्तमान युग की प्रचलित लय से भी अधिक "विलम्बितलय" में "ख्याल" गाते है। "द्रुतलय" की गायिकी भी इनकी उच्चकोटि की है। तीसरे सप्तक तक की तान यह बड़ी सफाई से लेते हैं।

खाँ साहब साम्प्रदायिक भावनाओं से कोसों दूर हैं। यह बिना किसी भावना के संगीत की शिक्षा प्रदान करते हैं। आकाशवाणी दिल्ली के स्थायी कलाकार श्री अमरनाथ, कलकत्ते की ए० कानन तथा पुराबी मुकरजी इनके प्रमुख शिष्य और शिष्यायें हैं, जिन्होंने इनके निर्देशन में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है।

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी

काशी की श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी अपने अनुपम गायन के लिये विख्यात हैं। यह जितना सुन्दर "ख्याल" गाती हैं, उससे कहीं अधिक ठुमरी तथा भाव एवं लोक गीत प्रस्तुत करती हैं।

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी का जन्म काशी में सन १९०८ में हुआ था। १½ वर्ष की अवस्था ही में इनकी माता जी इन्हें अकेला छोड़ कर परलोक सिधार गईं। इनका पालन-पोषण इनकी मौसी श्रीमती राजेश्वरी देवी ने जो अपने समय की प्रसिद्ध गायिका समझी जाती थीं किया। उन्होंने गायन ही नहीं अपितु अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं का अध्ययन किया था।

पारिवारिक जीवन संगीत-मय होने के कारण, सिद्धेश्वरी देवी की अभिरुचि स्वभावतः संगीत के अध्ययन की ओर हो गई। इन्हें बचपन ही से गुणी और योग्य संगीतज्ञों का गायन सुनने को मिला, जिसके फलस्वरूप इनके दिल और दिमाग में लय और ताल का वातावरण उत्पन्न हो गया।

११ वर्ष की अवस्था से इनकी शिक्षा सारंगी के प्रकाण्ड पंडित सियाजी महाराज द्वारा प्रारंभ हुई। उनसे इन्होंने पर्याप्त समय तक शिक्षा प्राप्त की। अन्त में यह "संगीत सम्राट्" बड़े रामदास जी की शिष्या हो गईं। उनसे इन्होंने "ख्याल", "तराना", "टप्पा" और "ठुमरी" की शिक्षा प्राप्त की। अल्पकाल ही में इन्होंने रामदास जी के निर्देशन में आश्चर्यजनक उन्नति की और सभी बड़े बड़े संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित की जाने लगीं।

श्रीमती सिद्धेश्वरी को लगभग सभी रियासतों, उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों तथा विभिन्न आकाशवाणी के कार्यक्रमों में भाग लेने का गौरव प्राप्त है। यह दो बार राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी भाग ले चुकी हैं।

श्रीमती सिद्धेश्वरी सभ्य और समाज प्रिय महिला हैं। इनका कथन है कि "नाद विद्या" का कोई अन्त नहीं है। अतः किसी व्यक्ति को भी अपनी विद्या पर गर्व नहीं करना चाहिये। यह विद्या किसी विशेष जाति अथवा सम्प्रदाय के लिये ही नहीं है, जो भी व्यक्ति लगन, परिश्रम और दृढ़ संकल्प से इसका अभ्यास करेगा, उसी को सफलता प्राप्त होगी।

श्री डी० वी० पलुस्कर

श्री डी० वी० पलुस्कर, संगीताचार्य स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर के एकमात्र पुत्र हैं, जिन्होंने अपनी पैतृक देन को विकसित और परिष्कृत करने में अभूत-पूर्ण सफलता प्राप्त की है। प्रायः बड़े-बड़े कलाकारों और विद्वानों में उनकी सी कलात्मकता और प्रतिभा नहीं मिलती, परन्तु श्री डी० वी० पलुस्कर इस तथ्य के अपवाद स्वरूप हैं। इन्होंने अपनी जिज्ञासा और साधना के बल पर संगीत के क्षेत्र में वह चमत्कार और पूर्णता दिखलाई, जो निसन्देह प्रशंसनीय है।
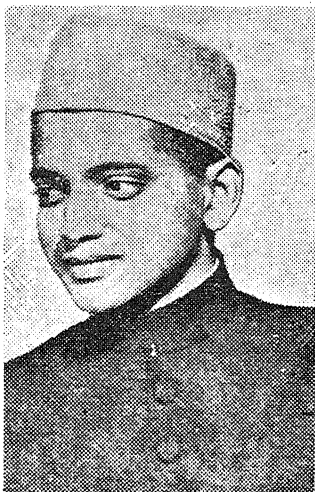
श्री डी० वी० पलुस्कर

श्री० डी० वी० पलुस्कर का जन्म कोल्हापुर के छोटे से ग्राम में जिसका नाम कुन्दाबाद है, २८ मई १९२१ को हुआ है। आपका पालन-पोषण नासिक ही में हुआ। पं० विष्णु दिगम्बर इन्हें अपने साथ सभी संगीत सम्मेलनों में ले जाया करते थे। पलुस्कर जी का इस अवस्था से ही संगीत के प्रति एक अटूट प्रेम उत्पन्न हो गया। पिता जी ने इनकी शिक्षा का भार स्वंय ही लेकर शिक्षा देनी प्रारंभ की, किन्तु पर्याप्त शिक्षा के पूर्व ही वह स्वर्गवासी हो गये।

विष्णु दिगम्बर जी के स्वर्गवासी होने के पश्चात् इनके चचेरे भाई पं० चिन्तामन गोपाल ने इनकी शिक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। १६३१ से इन्होंने पं० नारायण राव व्यास से शिक्षा लेना प्रारंभ किया और अन्त में सुप्रसिद्ध गायक श्री विनायक राव पटवर्धन से भी इन्होंने पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की।

आप गन्धर्व महाविद्यालय पूना में संगीत के सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिये आमंत्रित किये गये।

श्री पलुस्कर ने अपनी अल्पावस्था में ही अनुपम गायन एवं स्वर माधुरी से ख्याति प्राप्त करना प्रारंभ किया। सभी संगीत सम्मेलनों में यह भाग लेने के लिये आमंत्रित किये जाने लगे, परन्तु आपकी प्रसिद्धि १६३५ के जालन्धर संगीत सम्मेलन से हुई। उसी समय से यह भारत के सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में अपनी कला प्रदर्शन के लिये आमंत्रित किये जाते हैं। विभिन्न आकाश वाणियों से इनके कार्यक्रम बराबर प्रसारित होते रहते हैं। यह राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी दो बार भाग ले चुके हैं।

श्री पलुस्कर ने "बैजूबावरा" नामक चित्र में बैजू की भूमिका के नायक के लिये अपनी आकर्षक आवाज़ देकर पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है।

पं० भोलानाथ भट्ट

पं० भोलानाथ भट्ट, भट्ट घराने के सुविख्यात संगीतज्ञों में से हैं। यह घराना शताब्दियों से संगीत के अमूल्य रत्नों को जन्म देता आया है। इस घराने का सम्मान आदि काल से न केवल राजाओं और महाराजाओं द्वारा किया गया है अपितु महान सम्राट जहाँगीर तथा बादशाह आदिल शाहने भी किया है।
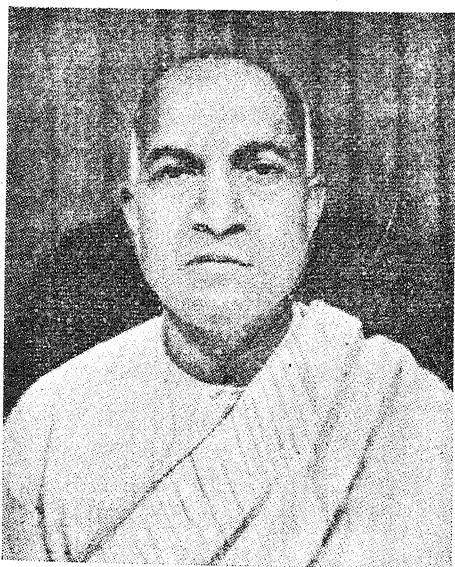
पं० भोलानाथ भट्ट

भट्ट जी का जन्म दरभंगा रियासत में हुआ था। आपके पिता पं० मोतीलाल भट्ट, ध्रुपद और धमार के अच्छे गायक थे। वह महाराजा दरभंगा के यहाँ १८ वर्ष तक दरबारी गायक के रूप में रहे थे।

जन्म जात प्रतिभा सम्पन्न पं० भोलानाथ जी ने केवल ५ ही वर्ष की अवस्था से अपने पिता से संगीत की शिक्षा प्रारंभ की। अल्प समय में ही आपने ध्रुपद और धमार की बहुत सी चीजें

सीख लीं। संगीत कला में पूर्ण पंडित होने के लिये चार प्रकार की गायिकी सीखना अनिवार्य है, पहली है "ध्रुपद" और "धमार", दूसरी है "ख्याल", तीसरी "टप्पा" और चौथी ठुमरी। "ध्रुपद" और "धमार" तथा टप्पे की गायिकी की शिक्षा तो आपको अपने पिता से मिल चुकी थी, और दो चार ख्याल भी आपने उनसे सीख लिये थे, किन्तु ठुमरी से बिलकुल ही अनभिज्ञ थे।

अभाग्यवश आपके पिता का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया, जिससे भट्ट जी की शिक्षा अपूर्ण ही रह गई। जो कुछ शिक्षा प्राप्त कर चुके थे उससे इन्हें संतोष नहीं था। अतः आप अपने चाचा पण्डित राजाराम भट्ट के पास शिक्षा प्राप्त करने गये, किन्तु उन्होंने इन्हें शिक्षा देने से साफ इनकार कर दिया।

निराश होकर भट्ट जी घर लौट आये। परिवार की अत्यन्त सोचनीय दशा देखकर वह घबरा उठे। सब में बड़े होने के कारण परिवार का समस्त भार आप ही के कन्धों पर आ गिरा था। एक ओर धन का अभाव, दूसरी ओर भाई-बहिनों की जिम्मेदारियाँ और तीसरी ओर संगीत सीखने की प्रबल इच्छा। इन तीनों समस्याओं ने इन्हें पागल बना दिया।

इन विपत्तियों से छुटकारा पाने के लिये, भट्ट जी को एक ही मार्ग दिखाई दिया और वह था आत्महत्या। एक रात को चुपचाप जमुना जी के किनारे जा पहुँचे। एकाएक इनके कानों में, पिता जी के मित्र श्री मेंहदी हसन जमीदार की आवाज़ आई "तुम यहाँ क्या कर रहे हो" भट्ट जी ने मन गढ़न्त उत्तर देकर कहा "मैं उस पार राजा साहब के मिलने के लिये जाने को सोच रहा हूँ।" उस जमीदार ने कुछ रुपये देकर कहा "नदी बहुत गहरी है, इसलिये नाव से जाना ही तुम्हारे लिये उचित होगा।" भट्ट जी नाव द्वारा रायबरेली के राजा साहब के पास पहुँचे, जो सब कुछ त्यागकर

सन्यासी हो गये थे और सदा नाव ही में रहते थे। राजा साहब भोलानाथ जी का गाना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें २०) पुरस्कार के रूप में देकर विदा किया।

यह रुपया अपने भाई-बहिनों के पास भेज कर भट्ट जी अपने मामा, पं० श्यामसुन्दर भट्ट के पास "ख्याल" सीखने के लिये चल दिये। मामा ने इन्हें बड़े प्रेम से शिक्षा प्रदान की। यहाँ पर भोलानाथ जी ने संगीत का पर्याप्त अभ्यास भी किया।

भोलानाथ जी को पता चला कि कलकत्ते में अनेकों गुणी संगीतज्ञ हैं, अतः आप कलकत्ते की ओर चल दिये। मार्ग में इन्हें बहुत सी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। भाग्यवश आपके पिता के परम मित्र सुप्रसिद्ध सरोद वादक उस्ताद करामतउल्ला मिल गये। उन्होंने उन्हें "बेचा बाबू" नामक रईस के यहाँ संगीत गोष्ठी में आमंत्रित किया। उस्ताद करामतउल्ला ने कहा "तुम्हारे कपड़े गन्दे हैं, मेरे पहन लो।" भट्ट जी ने स्वाभिमान से लेने से इनकार कर दिया।

रात्रि के समय में बेचा बाबू के निवासस्थान पर कुशल गायकों और वादकों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया। अन्त में भोला-नाथ जी को भी अपनी कला प्रदर्शन करने का अवसर मिला। इन्होंने एक ऐसा कठिन राग प्रारंभ किया, जिसे सभी पहचानने में असमर्थ रहे। सब लोगों ने बिना किसी अड़चन के ही इनका लोहा मान लिया। बेचा बाबू ने ४००) विदाई के रूप में देकर भोलानाथ जी को विदा किया। इतनी अधिक विदाई उस समय तक किसी भी संगीतज्ञ को नहीं मिली थी। भट्ट जी की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने शीघ्र ही अपने परिवार को बुलवा लिया।

कलकत्ते में भोलानाथ जी का अच्छा आदर सत्कार होने

लगा। बहुत से लोगों ने आपको ट्यूशन पर रख लिया। अतः भोलानाथ जी को धन का अभाव नहीं रहा। परन्तु इन्हें अभी तक विद्या से सन्तोष नहीं हुआ था।

मिट्ठू खाँ कलकत्ते के सुप्रसिद्ध गायक थे। वृद्धावस्था तथा अफीम के नशे के कारण इनका स्वभाव बहुत ही खराब हो गया था। जो कोई व्यक्ति उनके पास सीखने जाता उसका स्वागत पत्थरों और हड्डियों के द्वारा करते थे। सदैव एक मकान की तीसरी मंज़िल में नशे में मस्त पड़े रहते थे। भोलानाथ जी ने उनकी सेवा करना प्रारंभ किया, प्रतिदिन जलेबी और अफीम ले जाकर उनके चरणों में रख देते थे। अन्ता में मिट्ठू खाँ इनकी सेवा से प्रसन्न हो गये और उन्होंने बहुत कुछ सिखाया।

एक दिन भोलानाथ जी की भेंट रामपुर रियासत के दरबारी गायक उस्ताद वज़ीरखाँ से हो गई। उस्ताद वज़ीरखाँ खास तानसेन के वंश से थे। ख्याल गायिकी के सर्वश्रेष्ट गायकों में आपका स्थान था। एक बार यह भोलानाथ जी के पिता से मिलने भी आ चुके थे। उन्होंने बहुत सी चीज़े अपने खानदान की प्रदान की और अभ्यास करने का ढंग भी बताया।

प्रसिद्ध हारमोनियम वादक श्री गणपत भैया से भी भोलानाथ जी ने शिक्षा प्राप्त की। गणपत भैया के शिष्य, श्री श्यामलाल जी ने इन्हें ठुमरी की शिक्षा प्रदान की। दतियाँ के उस्ताद विलास खाँ से भी कुछ समय सीखा। भोलानाथ जी का कहना है कि उन्होंने शिक्षा अनेकों संगीतज्ञों से प्राप्त की है।

भट्ट जी ने उसके पश्चात् गायन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक ख्याति प्राप्त की और इनके कार्यक्रम बड़े संगीत सम्मेलनों तथा आकाशवाणियों से होने लगे।

दुर्भाग्यवश इन्हें संग्रहणी की बीमारी हो गई जिससे घबरा कर यह प्रयाग चले आये और स्वामी बिहारीदास जी के शिष्य हो गये। स्वामी जी इनसे इतने प्रसन्न रहते थे कि चिरसमाधि लगाने के पूर्व वह अपनी समस्त सम्पत्ति भोलानाथ जी को दे गये और आदेश दे गये कि प्रयाग छोड़कर कहीं न जायँ। आज-कल पंडित जी अलोपी बाग़ के निकट रहते हैं। यद्यपि विभिन्न नगरों से यह संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते हैं परन्तु गुरु आज्ञा के अनुसार यह कहीं नहीं जाते।

भट्ट जी ने अपनी विद्या प्रदान करके अनेक विद्यार्थियों को उच्चकोटि का कलाकार बना दिया, जिनमें राजाबनेली, सुप्रसिद्ध गायिका श्रीमती लीलाकारवाल, श्रीमती मणिक वर्मा, पं० शंकरलाल मिश्र, श्रीमती रेवा त्रिपाठी, श्री महेशनारायण सक्सेना तथा बम्बई के श्री बी० आर देवधर।

भट्ट जी के पास तबले के बोलों का भी सुन्दर संग्रह है। इन्होंने मित्रता के रूप में प्रयाग के सुप्रसिद्ध तबला वादक प्रोफेसर लालजी को भी कुछ बोल प्रदान किये हैं।

आजकल भोलानाथ जी संगीत समिति के 'संगीत निपुण" कक्षा के अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। इनके घर पर जो कोई भी व्यक्ति सीखने की इच्छा से जाता है, उसे यह कभी निराश नहीं करते।

श्रीमती कमला झरिया

श्रीमती कमला झरिया का जन्म सन् १६०४ में बिहार के झरिया नामक नगर में हुआ था। इनके वंश में किसी को भी संगीत से प्रेम नहीं था और न इनका पालन पोषण ही संगीतमय वातावरण में हुआ था। जब यह केवल ५-६ वर्ष की थीं इन्हें एक कीर्त्तन मण्डली के सुनने का अवसर मिला, जिससे यह अत्यधिक प्रभावित हुईं और उसी दिन से इन्होंने संगीत सीखने का निश्चय कर लिया।

श्रीमती कमला झरिया
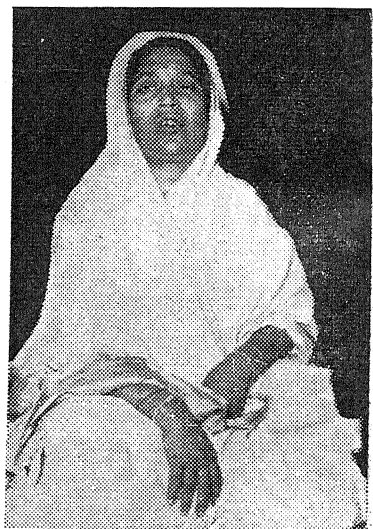
१० वर्ष की शैशवावस्था से इनकी गायन शिक्षा श्रीनाथ जी द्वारा प्रारंभ हुई, जिनसे इन्होंने दो-तीन वर्ष तक सीखा। इनके पश्चात् कतराश गढ़ के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद वज़ीर खाँ (रामपुर रियासत के नहीं) से भी एक दो वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की।

१३-१४ वर्ष की अवस्था में यह कलकत्ता आईं जहाँ इन्हें श्री सतीश घोष द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्त में सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री तुलसी लाहिड़ी जी की शिष्या हो गईं और उन्हीं से नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त की।

सन् १६२८ में श्रीमती झरिया एच० एम० वी० द्वारा आमंत्रित की गई। उसी समय से अभी तक इनके गायन के रिकार्ड बन रहे हैं। कदाचित ही इतने अधिक गानों के रिकार्ड किसी अन्य कलाकार के बने हों।

यद्यपि इस समय श्रीमती झरिया की अवस्था ५० वर्ष के लगभग है। परन्तु इनकी वाणी में वही ओज, स्वरों में वही आकर्षण तथा संगीत प्रदर्शन में वही सौन्दर्य विद्यमान है जो आज से ३० वर्ष पूर्व विद्यमान था। प्राय: अधिक अवस्था हो जाने पर पुरुष अथवा स्त्री की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी नाद में पहले की भांति वह घनत्त्व और स्वर लालित्य नहीं रह जाता, किन्तु श्रीमती झरिया इनके लिये अपवाद स्वरूप हैं। संगीत प्रदर्शन के समय इनके गीतों में उनका व्यक्तित्व मुखरित हो उठता है और उनमें कोमल कल्पनाओं एवं नारी सुलभ भावनाओं के अनेक चित्र चित्रित हो उठते हैं। उस समय एक स्तब्ध वातावरण उत्पन्न हो जाता है और सारा वायु मण्डल स्वर लहरियों से प्रतिध्वनित होकर श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देता है।

"संगीत सम्राट" "डाक्टर" अलाउद्दीन खाँ

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ अपनी महान् कला के लिये न केवल भारत में ही विख्यात हैं, अपितु अमेरिका और योरप में भी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आपने योरप और अमेरिका का पर्यटन करके, अपनी अनुपम कला द्वारा श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया था।

अलाउद्दीन खाँ

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ "संगीत सम्राट" "संगीत विशारद" "संगीत नायक" "सितारे हिन्द" "संगीताचार्य" "डाक्टर आफ म्युज़िक" आदि उपाधियों से अलंकृत हैं। आप न केवल समस्त भारतीय वाद्यों के बजाने में निपुण हैं; अपितु कुछ विदेशी वाद्यों के बजाने में भी कुशल हैं।
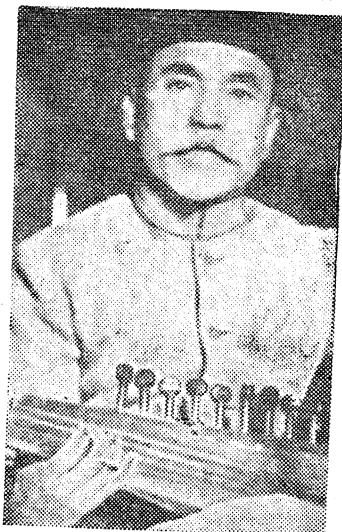
इस समय आपकी अवस्था ८४ वर्ष के लगभग है। फिर भी पूर्णतया यह स्वस्थ हैं। इस अवस्था में भी बड़ी तैयारी के साथ, सरोद, सितार, वेला, स्वर बहार, स्वर शृंगार आदि वाद्य यन्त्रों का प्रदर्शन करते हैं।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का जन्म बंग प्रान्त के त्रिपुरा नामक स्थान में हुआ था। आपका प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संकटमय

रहा। मार्ग में नाना प्रकार की वाधाओं से अग्रसर होने से रोका, किन्तु आपने शान्ति और धैर्य के साथ उन समस्त बाधाओं पर विजय पाई। लगभग आठ वर्ष की अवस्था में आपको विद्याध्ययन के लिये पाठशाला भेजा गया।

विद्याध्ययन के साथ साथ आप में बाल्यावस्था से ही संगीत के प्रति नैसर्गिक अभिरुचि विद्यमान थी जिसके फलस्वरूप प्रायः पाठशाला न जाकर वहाँ के स्थानीय शिव मन्दिर में साधु संतों के गीतात्मक एवं वाद्यात्मक संगीत सुनने के लिये जा पहुँचते थे। उन आकर्षक गीतों से आप अत्यन्त प्रभावित हुए, फलतः आपके मन में संगीत कला के सीखने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। आपने संगीत का शास्त्रीय एवं क्रियात्मक ज्ञान किसी योग्य गुरु से अर्जित करने का संकल्प किया।

आपके माता पिता को संगीत से विशेष प्रेम नहीं था। वे संगीत की अपेक्षा पाठशालीय विषयों के अध्ययन को अधिक महत्व देते थे। उनका कथन यह था कि बिना पूर्ण रूप से विद्या उपार्जन किये किसी अन्य कला का सीखना व्यर्थ है। किन्तु बालक अलाउद्दीन को यह बात प्रिय न लगी। माता पिता के डराने तथा धमकाने पर भी उनका मन्दिर जाना बन्द नहीं हुआ। अन्त में इनके माता पिता ने इन्हें भोजन देना तक बन्द कर दिया। विवश होकर आप कलकत्ते चले गये। आपको कलकत्ते में नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कितने ही दिन बिना भोजन के बिताये और अन्त में भिक्षा के लिये लोगों के सम्मुख हाथ फैलाना पड़ा, किन्तु फिर भी आप अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए।

भाग्यवश आपका मिलाप सुप्रसिद्ध गायक नन्नू गोपाल जी से हो गया। उन्हें इन्होंने अपनी पूर्ण कथा कह सुनाई। संगीत के

प्रति इतना प्रेम देखकर गुरु के हृदय में दया आई। उन्होंने अलाउद्दीन को अपना शिष्य बना लिया और स्वर साधन से आपकी शिक्षा प्रारम्भ की। कुछ समय तक सीखने के पश्चात आप स्वामी विवेकानन्द के भाई श्री अवदत्त जी की शरण में चले गये। आपको अभी ७ ही वर्ष सीखते हुए हुआ था कि एकाएक गुरु का स्वर्गवास हो गया, "गुरु बिन कौन दिखावे बाट" की समस्या आपके सम्मुख उपस्थित हुई। फलतः संगीताभ्यास तो आपने बिलकुल ही बन्द कर दिया।

इसके अनन्तर आपका परिचय सुप्रसिद्ध सरोदवादक उस्ताद अहमदअली खाँ से हुआ। इनसे आपने सरोद की शिक्षा लेनी प्रारम्भ की। उस्ताद अहमदअली खाँ ने पर्याप्त समय तक सिखाया और अन्त में परामर्श दिया कि इस वाद्य यंत्र में निपुण होने के लिये रामपुर नवाब के दरबारी संगीतज्ञ उस्ताद वज़ीर खाँ से विद्या-उपार्जन करें। अतः उस्ताद वज़ीर खाँ से विद्याध्ययन करने की लालसा से रामपुर जा पहुँचे। ६ महीने तक अनेकानेक प्रयत्न करने पर भी अपको उस्ताद वज़ीर खाँ के दर्शन तक नहीं हुए।

इससे आपको बड़ी निराशा हुई। अन्त में विष पान करके अपना जीवन ही दे देना आपने उचित समझा। अफीम लेकर आप आ ही रहे थे कि एकाएक किसी पदाधिकारी की मोटर के सम्मुख आ गये, किन्तु उचित समय पर मोटर रुक गई। उस पदाधिकारी ने इनसे पूछा "तुम्हें अपने प्राणों का भय नहीं है।" इन्होंने उत्तर दिया "मैं तो स्वयं ही मरने की तैयारी का सामान लेकर लौट रहा हूँ। मुझे अपने प्राणों का लेश मात्र भी भय नहीं है।" उस पदाधिकारी को इन्होंने अपनी पूर्ण कथा कह सुनाई, उसके हृदय में इनके प्रति बहुत ही दया उत्पन्न हुई। तुरन्त ही वह इन्हें उस्ताद वजीर खाँ के पास ले गया।
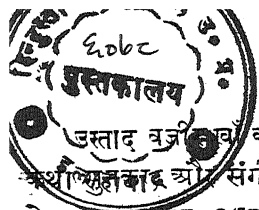
उस्ताद वजीर खाँ को अलाउद्दीन की प्रारम्भ से अन्त तक की [illegible] और संगीत विद्या के उपार्जन के प्रति इतनी जिज्ञासा देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ इन्हें अपना शिष्य बना लिया और लगातार ३३ वर्ष तक सिखाया।

विद्याध्ययन के पश्चात् कलकत्ते में जाकर आपने अपनी अनुपम कला का प्रदर्शन जनता के सम्मुख किया। आप सभी सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाने लगे। मैहर के राजा ब्रजनाथ सिंह आपके कार्य-क्रम से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने आपको अपना गुरु बना लिया। महाराजा इन्हें मैहर ले आये और इनसे प्रार्थना की कि आजन्म मैहर ही रहें। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ २२ वर्ष से महाराजा को गायन शिक्षा प्रदान कर रहे हैं और अभी आप को बहुत सिखाना शेष है।

साम्प्रदायिकता की भावना उस्ताद अलाउद्दीन में लेशमात्र भी नहीं है। आपका कथन है कि किसी भी कला के प्रचार और प्रसार में उसके कलाकर का एक बड़ा हाथ रहता है; इसलिये उस कलाकार को चाहिये कि उस विद्या को बिना किसी जाति पांति का भेदभाव रखते हुए सभी वर्ग के लोगों को प्रदान करे। फलतः उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के अनेकानेक हिन्दू शिष्य भी हैं।

जातीय भेदभाव से भी आप कोसों दूर हैं। यहाँ तक कि मुसलमान वंश में उत्पन्न होने पर भी अपनी पुत्री का नाम "अनपूर्णा" रक्खा है और उसका विवाह अपने शिष्य पंडित रविशंकर जी के साथ कर दिया है। आपने अपनी पुत्री को भी गायन तथा वीणावादन की पर्याप्त शिक्षा दी है। पं० रविशंकर भी एक सुविख्यात संगीतज्ञ हैं। इनके पुत्र का नाम सुसेन्द्रशंकर चौधरी

है, जिसकी अवस्था लगभग १० वर्ष की होगी, उसे भी उस्ताद् अलाउद्दीन खाँ सरोद्वादन की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

आपके पुत्र अली अकबर भी एक विख्यात संगीतज्ञ हैं। आप ३२ वर्ष की अवस्था ही में समस्त भारतीय वाद्यों के बजाने में निपुणता प्राप्त कर चुके हैं। इनके चार पुत्र और एक पुत्री है। जिनका नाम क्रमशः अशिश कुमार, ध्यानीश कुमार, प्राणेश कुमार तथा उमरिष कुमार है और पुत्री का नाम "श्री" है। आप सभी बच्चों को स्वयं ही शिक्षा दे रहे हैं।

उस्ताद हाफिज अली खाँ

उस्ताद हाफिज अली खाँ की गणना भारत के श्रेष्ठ सरोद वादकों में की जाती है। यह "संगीत रत्नालंकार", "सरोद नित्राज", "आफ़ताब्बे सरोद" आदि उपाधियों से अलंकृत हैं। गत वर्ष राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इन्हें सम्मानित करके १०००)१ कश्मीरी साल तथा प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया।

उस्ताद हाफ़िज़ अली खाँ

उस्ताद हाफ़िज़ अली खाँ ने ११ वर्ष की अवस्था से अपने पिता ने उस्ताद नन्हें खाँ से सरोद सीखना प्रारंभ किया।

इस विद्या में पूर्ण निपुण होने के लिये, इनके पिता ने मथुरा के हरिदास स्वामी के ११वीं पीढ़ी के महाराज गणेशलाल जी के पास "ध्रुपद", "धमार" तथा "हौली" की शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया। यहाँ पर हाफिज अली खाँ साहब ने बड़े परिश्रम और संलग्नता के साथ विद्याध्ययन किया।

पूर्ण रूप से शिक्षा पाने के पश्चात्, इन्होंने अल्प समय में ही पर्याप्त उन्नति की। महाराज ग्वालियर ने इनकी प्रशंसा सुनकर अपने यहाँ दरबारी संगीतज्ञ रख लिया।

युवराज साहब एडवर्ड जब भारत में आये तो उनके स्वागतार्थ एक विराट् सभा का आयोजन किया गया। जिसमें ६ रागों को प्रत्येक वाद्य यंत्र के श्रेष्ठ वादकों को आमंत्रित किया गया। उस्ताद हाफिज अली खाँ को सरोद वादन के लिये चुना गया। इन्होंने "राग वसन्त" बजाकर श्रोताओं को मोह लिया।

आकाशवाणी कलकत्ते से सर्वप्रथम सरोद वादन का गौरव उस्ताद हाफिज अली खाँ को ही प्राप्त है।

रामपुर के स्वर्गीय नवाब हमीद अली खाँ ने इन्हें अपने दरबार में आमंत्रित करके दरबारी संगीतज्ञ का पद प्रदान किया। यहाँ पर हाफिज अली खाँ, उस्ताद वज़ीर खाँ के निकट सम्पर्क में आये और उनसे "स्वर शृङ्गार" की शिक्षा प्राप्त की।

उस्ताद हाफिज अली खाँ भारत के सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में भाग ले चुके हैं और अभी तक सभी सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते हैं। विभिन्न आकाशवाणियों से इनके कार्यक्रम भी प्रसारित होते रहते हैं।

यद्यपि इनकी अवस्था लगभग ६० वर्ष की है, परन्तु स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। यह हृष्ट-पुष्ट और लम्बे चौड़े व्यक्ति हैं।

उस्ताद सादिक अली खाँ

भारत के श्रेष्ठ वीणावादकों में उस्ताद सादिक अली खाँ का नाम सर्व प्रथम आता है। यह उत्तर भारतीय सरस्वती वीणा बजाते हैं, जिसे "बीन" कहा जाता है। इनके वाद्य कला प्रदर्शन में जो रोचकता, गम्भीरता एवं मधुरता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह गायक जोड़, थोक झारा, लड़ गुथाव जो वीणावादन के विशेष अंग हैं उनका स्पष्टीकरण अत्यन्त सुन्दरता के साथ करते हैं। इनके पास अप्रचलित एवं कठिन रागों का सुन्दर संग्रह है जो हमें समय समय पर सुनने को मिलता है।

उस्ताद सादिक अली खाँ

उस्ताद सादिक अली खाँ का जन्म विक्रम संवत् १६५१ में राजसवाई जयपुर में हुआ था। इनके वंश में सभी कुशल वीणा वादकों ने जन्म लिया है। इनके पिता उस्ताद मुशर्रफ़ अली खाँ साहब भी एक प्रसिद्ध कलाकार थे। यों तो ५ वर्ष की अवस्था से ही उस्ताद सादिक अली खाँ साहब वीणा बजाया करते थे, किन्तु नियम पूर्वक इन्होंने १० वर्ष की अवस्था से उस्ताद शाह अली अहमद खाँ से सीखना प्रारम्भ

किया। इनके अतिरिक्त आगे चलकर इन्होंने अपने पिता जी तथा उस्ताद रज्जब अली साहब से भी पर्याप्त समय तक सीखा।

१२ वर्ष की अवस्था में उस्ताद सादिक अली अच्छी तरह वीणा बजाने लगे। इसी समय इन्हें महाराजा गायकवाड़ बड़ोदा के सम्मुख अपने वाद्य प्रदर्शन का अवसर मिला। इन्होंने इतनी रोचकता एवं मधुरता के साथ वीणा बजाई कि महाराजा मन्त्र मुग्ध हो गये। उन्होंने कहा "हम तुम्हारे वीणा वादन से बहुत खुश हैं। आज से तुम्हें हमारे दरबार में जगह दी जाती है। प्रत्येक मास १००) दिया जायगा और रहने के लिये मकान तथा सवारी मुफ्त दी जायगी।"

यदि कोई साधरण व्यक्ति होता तो धन और मान दोनों को पा लेने से फूला न समाता। परन्तु बालक सादिक अली ने सोचा कि धन और पद तो पूर्णरूप से शिक्षित हो जाने पर अनेक मिलेंगे परन्तु जो सीखने का सुन्दर अवसर इस समय मिला हुआ है, फिर शायद किसी भी दशा में न मिले।

उन्होंने हाथ जोड़कर महाराज से निवेदन किया "महाराज आपने जो पद और इज्जत मुझे दी है, वास्तव में मैं उसके अभी बिल्कुल ही काबिल नहीं हूँ। अभी तो मुझे सीखते केवल दो ही वर्ष हुए हैं। मेरी विद्या अभी अपूर्ण है। आप १००) के स्थान पर १०००) भी प्रदान कर सकते हैं, परन्तु यह विद्या जो गुरु के चरणों में बैठकर मुझे मिल रही है वह फिर किसी भी हालत में न मिल सकेगी।"

इस उत्तर को सुनकर महाराज बहुत खुश हुए और उन्होंने कहा "हमारे दरबार के दरवाजे तुम्हारे लिये आज से खुल गये हैं, जिस दिन तुम्हें अपनी विद्या से सन्तोष हो जाय तुम आकर अपना पद ले सकते हो।" यद्यपि उस्ताद सादिक अली खाँ आगे

चलकर थोड़े ही समय में एक महान कलाकार के नाम से विख्यात हो गये किन्तु जब वह महाराज बड़ोदा से मिले तो इन्होंने अपने आपको विद्यार्थी ही बताया और कहा, "अभी मुझे बहुत सीखना शेष है।" आज भी उस्ताद सादिक अली कहते हैं कि, "सब कुछ सीखने के बाद भी मैं यह अनुभव करता हूँ कि मैं अभी कुछ भी नहीं जानता।"

१६ वर्ष की अवस्था में सादिक अली साहब काठियावाढ़ पहुँचे। लीमड़ी वडवान के महाराजा इनके वाद्य प्रदर्शन से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने अपने दरबार में इन्हें स्थान देना चाहा किन्तु कई मजबूरियों के कारण यह उस पद को स्वीकार नहीं कर सके।

तदनन्तर यह घूमते-घूमते झालावाड़ रियासत पहुँचे। महाराजा ने इन्हें अपना दरबारी संगीतज्ञ नियुक्त कर दिया, जिस पद पर यह १२ वर्ष तक आसीन रहे। इसके पश्चात् उस्ताद सादिक अली खाँ जामनगर के महाराज रणजीत सिंह के यहाँ २ वर्ष तक संगीत निर्देशक रहे। १२ वर्ष तक महाराजा अलवर के यहाँ दरबारी संगीतज्ञ रहे। आप पिछले १५ वर्षों से नवाब रामपुर के यहाँ दरबारी संगीतज्ञ के पद पर विद्यमान हैं।

रियासतों के अतिरिक्त उस्ताद सादिक अली खाँ ने अनेक उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में भी भाग लिया है। २० वर्ष से विभिन्न रेडियो स्टेशनों से इनके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं।

सन् १९५६ में अखिल भारतीय रेडियो स्टेशन, दिल्ली द्वारा प्रत्येक तार के वाद्ययन्त्र के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों को अपनी वाद्य कला प्रदर्शन के लिए आमन्त्रित किया गया था। डाक्टर अला-उद्दीन खाँ, उस्ताद बुन्दू खाँ आफताबे "सरोद" उस्ताद हाफिज

अली खाँ, श्री हनुमन्त राव आदि के साथ उस्ताद सादिक अली खाँ को भी वीणा वाद्य प्रदर्शन के लिए आमन्त्रित किया गया। इन्होंने इतनी सुन्दरता और रोचकता से ऐसा वीणा वाद्य प्रदर्शन किया, जिसे आज भी लोग याद करते हैं। गत अप्रैल में उस्ताद सादिक अली खाँ राष्ट्रीय कार्यक्रम में वीणा वाद्य प्रदर्शन के लिये बुलाये गये।

कुछ ही समय हुआ उस्ताद सादिक अली खाँ ने अपने निर्देशन द्वारा रामपुर के ही एक मिस्त्री नज़ीर अहमद की सहायता से एक नवीन प्रकार की वीणा का निर्माण करवाया है। आज तक जो वीणायें बनी हैं उनमें किसी भी प्रकार का कोई अन्तर नहीं किया गया, किन्तु उस्ताद सादिक अली खाँ की सूझ का ही फल है कि उन्होंने वीणा के आकार में कोई परिवर्तन न करके उसमें ऐसा यांत्रिक परिवर्तन किया है जिससे उनके स्वरों में गंभीरता और ध्वनियों में तीव्रता उत्पन्न होने लगी। उन्होंने नीचे की लोकी की तुम्बियों के स्थान पर अलमुनियम की तुम्बियाँ लगा दी तथा कुछ अन्य परिवर्तन भी कर दिये जिससे इस वीणा की आवाज़ पहली वीणा से १० गुनी बढ़ गई है। इसका प्रयोग उस्ताद सादिक अली ने समय-समय पर रेडियो स्टेशन पर अपने कार्यक्रम में भी किया है।

उस्ताद सादिक अली खाँ ने दोनों वीणायें दिखाये। इस प्रकार जो नवीन वीणा उस्ताद सादिक अली खाँ के निर्देशन तथा मिस्त्री नज़ीर अहमद के अथक परिश्रम द्वारा बनाई गई है वह नव अविष्कृत वाद्य यंत्रों में एक ऊँचा स्थान रखती है। उस्ताद सादिक अली खाँ का एक पुत्र भी है जिसका नाम असद अली है। उसकी अवस्था इस समय १५ वर्ष के लगभग होगी। उसे सादिक अली साहब स्वयं ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

उस्ताद अली अकबर खाँ

उस्ताद अली अकबर संगीत सम्राट डाक्टर अलाउद्दीन खाँ के होनहार पुत्र है। इन्होंने ३३ वर्ष की अल्पावस्था ही में भारत के
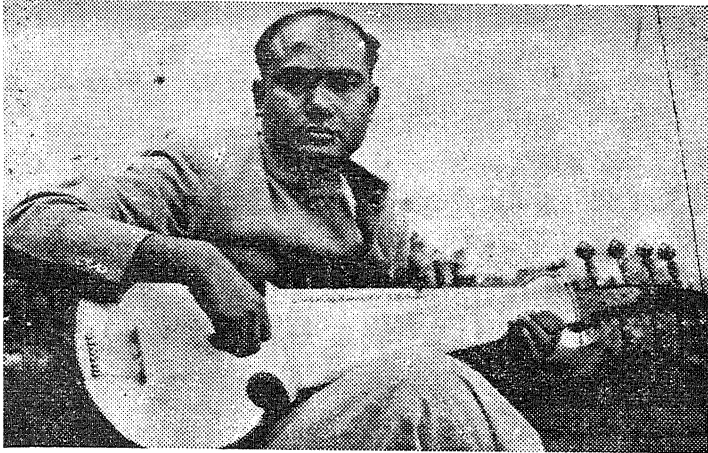
उस्ताद अली अकबर खाँ

समस्त वाद्य यंत्रों के वादन में दक्षता प्राप्त की है। इनका सरोद वादन अत्यन्त उच्चकोटि का है, जिसके लिये ये समस्त भारत के उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते हैं।

उस्ताद अली अकबर का जन्म बंग प्रान्त के शिवपुर नामक ग्राम में १४ अप्रैल १६२० को हुआ था। ५ वर्ष की अवस्था से इनकी संगीत शिक्षा प्रारंभ हुई। सर्व प्रथम गायन में इन्हें ध्रुपद तथा धमार की शिक्षा प्रदान की गई। गायन के साथ ही इन्होंने तबले तथा मृदंग की शिक्षा महात्मा आफताब उद्दीन से ग्रहण करना

प्रारंभ किया। ६ वर्ष की अवस्था से अलाउद्दीन खाँ साहब नियमित रूप से विशेष ध्यान देकर शिक्षा प्रदान करने लगे। वह सदैव अधिक से अधिक परिश्रम करने के लिये बाध्य करते थे, जिससे घबराकर यह घर से भाग भी गये थे।

सरोद की शिक्षा के साथ ही साथ इनके पिता ने स्कूली शिक्षा की ओर भी इनका ध्यान रक्खा, जिसके फलस्वरूप इन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा भी पास की। जैसे-जैसे ये बड़े होते गये, पिता जी इन्हें उतना अधिक अभ्यास करने के लिये बाध्य करते गये। किसी-किसी दिन इन्होंने १८ घन्टे तक अभ्यास किया।

वास्तव में अली अकबर खाँ की रुचि तो सरोद की शिक्षा प्राप्त करने की थी, परन्तु वे अत्यधिक अभ्यास बहुत से घबराते थे। एक दिन यह घर से पुनः भाग गये और आकाशवाणी बम्बई में जाकर सरोदवादक की नौकरी करने लगे। महाराज मैहर ने इनका कार्यक्रम जब रेडियो पर सुना तो शीघ्र ही अपने यहाँ बुलवा लिया।

डा० अलाउद्दीन खाँ जिस किसी संगीत सम्मेलन में जाते, इन्हें अवश्य ले जाते थे। यह भी उनके साथ सरोद बजाते थे। स्वतंत्र सरोद बजाने का प्रथम अवसर इन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय के संगीत सम्मेलन में प्राप्त हुआ जहाँ इन्होंने "पूरिया धनाश्री" राग को इतनी सुन्दरता एवं रोचकता से बजाया कि लोग दंग रह गये। यहीं से इनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

इसके पश्चात् श्री उदयशंकर जी ने इन्हें अपनी नृत्य मण्डली में सम्मिलित कर लिया, जिसके फलस्वरूप इन्हें समस्त भारत में अपनी कला प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

तदुनन्तर यह आकाशवाणी लखनऊ में संगीत निर्देशक के पद पर नियुक्त किये गये जहाँ यह ६ वर्ष तक रहे। इनकी ख्याति

सुनकर महाराज जोधपुर ने अपना दरबारी संगीतज्ञ बना लिया। महाराज इनका सरोद वादन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वहाँ की सबसे ऊँची उपाधि "सरदार" दी, और उन्हें बहुमूल्य चीजें भेंट के रूप में दी।

उस्ताद अली अकबर ने जोधपुर में एक स्थानीय आकाश-वाणी स्टेशन स्थापित किया और जनता में शास्त्रीय संगीत का प्रचार किया। यहाँ इन्होंने एक विराट संगीत सम्मेलन भी किया, जिसमें भारत के सर्वश्रेष्ट कलाकारों को आमंत्रित करके सम्मानित किया गया।

दुर्भाग्यवश महाराज जोधपुर का वायुयान दुर्घटना से देहान्त हो गया, जिससे उस्ताद अली अकबर को बहुत दुख हुआ। यह शीघ्र ही जोधपुर से बम्बई चले आये और चित्रों में संगीत निर्देशन करने लगे। "आधियाँ" "बन्दिश" तथा "हम सफर" में इन्होंने अति ही कुशल संगीत निर्देशन किया है।

उस्ताद अली अकबर भारत के सभी विराट संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते हैं। विभिन्न आकाश वाणियों से इनके कार्यक्रम भी होते रहते हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी आप भाग ले चुके हैं।

खाँ साहब सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। अपने पिता की भाँति यह भी साम्प्रदायिक भावनाओं से दूर हैं इनके प्रमुख शिष्य और शिष्याओं में श्री निखिल बनरजी तथा सुश्री शरण रानी माथुर प्रमुख हैं।

पण्डित रविशंकर

सामान्यतया कलाकार दो प्रकार के होते हैं, एक तो वे जो परम्परागत शास्त्रीय नियमों के अनुसार अपनी कला का अक्षरशः प्रदर्शन करते हैं, दूसरे वे जो शास्त्रीय नियमों के आधार पर कला को नवीनतम रूप देकर उसे अत्यन्त प्रगतिशील बनाने का प्रयास करते हैं। इन दोनों प्रकार के कलाकारों में दूसरी कोटि के कलाकार श्रेष्ठतर माने जाते हैं। श्री रविशंकर उन कलाकारों में से हैं जो शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए तथा रागों की मर्यादा की रक्षा करते हुए संगीत कला को नवीनतम रूप प्रदान करने की असाधारण क्षमता रखते हैं। आप प्रायः अपने सितार वाद्य प्रदर्शन में अप्रचलित एवं नवीन रागों का ही प्रयोग करते हैं, जिसमें श्रोताओं को उनकी वादन शैली की मौलिकता का पूर्णरूप से परिचय मिलता है।

पं० रविशंकर जी का जन्म काशी में ७ अप्रैल १९२० को हुआ था। इनके पिता श्यामशंकर संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। उन्हें राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन में डाक्ट्रेट भी मिली थी। रविशंकर जी चार भाई हैं। सब में ज्येष्ठ श्री उदय शंकर हैं जो समस्त संसार में अपनी नृत्य कला के लिये प्रसिद्ध हैं, दूसरे हैं, श्री राजेन्द्रशंकर, तीसरे हैं श्री देवेन्द्र शंकर और चौथे सब में छोटे हैं रविशंकर जी।

बाल्यावस्था से ही रविशंकर जी अपने अग्रज उदयशंकर के सम्पर्क में रहे, जिसके फलस्वरूप इनके हृदय में नृत्यकला के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो गई। साढ़े नौ वर्ष की अवस्था से इन्होंने अपने भाई से नृत्य की शिक्षा लेनी प्रारंभ की। बौद्धिक शक्ति

रवी शंकर

अधिक प्रबल होने के कारण, इन्हें एक ही बार में जो कुछ बताया जाता था, स्मरण हो जाता था।

श्री उदयशंकर अपनी नृत्य मण्डली के साथ इन्हें भी संसार भ्रमण कराने के उद्देश्य से साथ ले गये। लगभग ६ वर्ष तक इन्होंने अमेरिका, योरप तथा इङ्गलैंड का भ्रमण किया और समय-समय पर अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन किया। नृत्य की शिक्षा के साथ ही साथ इन्होंने अनेक वाद्य यंत्र जैसे तबला, सितार, जलतरंग, दिलरुबा आदि की शिक्षा भी प्राप्त की। इन्होंने स्वयं "चित्र सेना" तथा "रचना" नामक दो नृत्यों की रचना तथा उनका निर्देशन किया जिनकी प्रशंसा दर्शकों ने मुक्त कंठ से की।

रविशंकर जी को लगभग दो वर्ष तक पेरिस में रहना पड़ा, वहीं पर इन्होंने पाश्चात्य नृत्य एवं संगीत के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की। यहाँ पर इन्होंने फ्रेंच भाषा भी सीखी जिसे अभी तक सरलता-पूर्वक बोल सकते हैं।

सन् १९३५ में संगीत सम्राट् डा० अलाउद्दीन ख़ाँ भी उदयशंकर जी की मंडली में संसार के भ्रमण के हेतु गये, जिसके फलस्वरूप रविशंकर जी को उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। डा० साहब उनकी व्यवहार कुशलता, आदरभाव, तथा आज्ञापालन की क्षमता पर मुग्ध हो गये। जब कभी उन्हें समय मिलता वह इनका ध्यान वाद्ययंत्रों की ओर आकर्षित करते और उन्हें उनकी शिक्षा भी प्रदान करते। रविशंकर जी के हाथ में सितार वाद्य प्रदर्शन में एक प्रकार की सरसता एवं मधुरता देखकर इन्होंने सितार की शिक्षा प्रदान करना प्रारम्भ किया। एक वर्ष पूरा हो जाने पर डा० साहब भारतवर्ष चले आये। रविशंकर जी उनकी बतलाई हुई चीजों का निरन्तर अभ्यास करते रहे और साथ में नृत्य की शिक्षा भी लेते गये।

सन् १६३८ में उदयशंकर जी भारत चले आये और उन्होंने अल्मोड़ा निवास-स्थान बनाया। वहाँ रविशंकर जी को अपने भविष्य के जीवन पर विचार करने का समय मिला। इस समय इनके सामने दो प्रश्न थे, एक था नृत्य-कला में कुशलता प्राप्त करना और दूसरा था वाद्ययंत्रों में। बहुत कुछ सोचने के पश्चात् भी यह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। इस विषय में परामर्श लेने के लिए वह डा० साहब से मिलने के लिए मैहर गये। डा० साहब के शिक्षा प्रदान करने के ढङ्ग तथा वात्सल्य प्रेम से वह इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने वापिस लौटने की कल्पना भी नहीं की और उनके चरणों में सितार की शिक्षा प्रारम्भ कर दी। केवल ६ वर्ष के अल्प समय में ही डा० साहब ने रविशंकर जी को एक कुशल एवं सुविख्यात संगीतज्ञ बना दिया। डा० साहब अपनी पुत्री अन्नपूर्णा का विवाह भी रवि जी के साथ कर दिया।

सन् १६४४ के अन्त में श्री रविशंकर बम्बई आये। इन्होंने जहाँ-जहाँ अपनी वाद्य कला का प्रदर्शन किया श्रोताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इनकी ख्याति अल्प समय में ही भारत के कोने-कोने में फैल गई। कुछ समय तक रवि जी भारतीय जन नाट्य संघ के निर्देशक के रूप में भी रहे। उसी के केन्द्रीय दल के साथ आप प्रयाग भी आये थे।

फरवरी १६४६ में राष्ट्रीय वाद्य वृन्द (National Orchestra) के निर्देशन के लिए आप आकाशवाणी दिल्ली द्वारा आमन्त्रित किए गये। यहाँ पर उनको अपनी कला प्रदर्शन एवं निर्देशन की महान योग्यता का परिचय देने का अवसर मिला। भारतीय वाद्य वृन्द जो विदेशों में भी आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, रवि जी की कला का पूरा परिचय देता है।

रवि जी जब से दिल्ली आये हैं संगीत सम्बन्धी विषयों के ऊपर खोज कर रहे हैं। यह इनका कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है।

यदि हम रविशंकर जी को ही राष्ट्रीय कार्यक्रम का जन्मदाता कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। उन्हीं के कारण हमें प्रत्येक शनिवार को भारत के लब्ध-प्रतिष्ठित गायकों तथा वादकों का कार्यक्रम सुनने को मिलता है। रवि जी ने इस कार्यक्रम में अभी तक केवल ३ बार ही भाग लिया है।

रविशंकर जी के निकट सम्पर्क में मुझे आने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे मैं उनके विचार आदि से अवगत हो सका। यहाँ संक्षेप में उनके विचार दिये जा रहे हैं।

आज से १०० वर्ष पूर्व का समय एक ऐसा युग था, जब कि राजदरबारों तथा संगीत अधिवेशनों में प्रभुत्व स्थापित कर लेना ही संगीतज्ञों का एकमात्र उद्देश्य था। वे संगीत के किसी एक क्षेत्र में किसी एक अंग का पूर्ण अभ्यास कर उसी में अपनी कला कुशलता का परिचय देकर ख्याति प्राप्त कर लेते थे। किन्तु डा० अलाउद्दीन खाँ ने संगीत के इस सीमित क्षेत्र को अत्यन्त विकसित एवं व्यापक बना दिया और शताब्दियों से एक संकुचित परिधि में जकड़ी हुई कला को एक नवीन दिशा प्रदान की।

हम यह सरलतापूर्वक कह सकते हैं कि डा० अलाउद्दीन खाँ के पुत्र एवं शिष्य पं० रविशंकर जो संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में कुशलता प्राप्त कर चुके हैं, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

रवि जी की पत्नी भी वाद्य यन्त्रों के बजाने में कुशल हैं और इनका पुत्र सुभेन्द्रशंकर, जो अभी १० वर्ष ही का है, सरोदवादन की शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

रवि जी, अत्यन्त सरल स्वभाव के समाज-प्रिय कलाकार है।

श्री पन्नालाल घोष

पन्नालाल जी की गणना भारत के श्रेष्ठ वंशी वादकों में की जाती है। इनके वंशी वादन में आकर्षण, माधुर्य और लालित्य तो
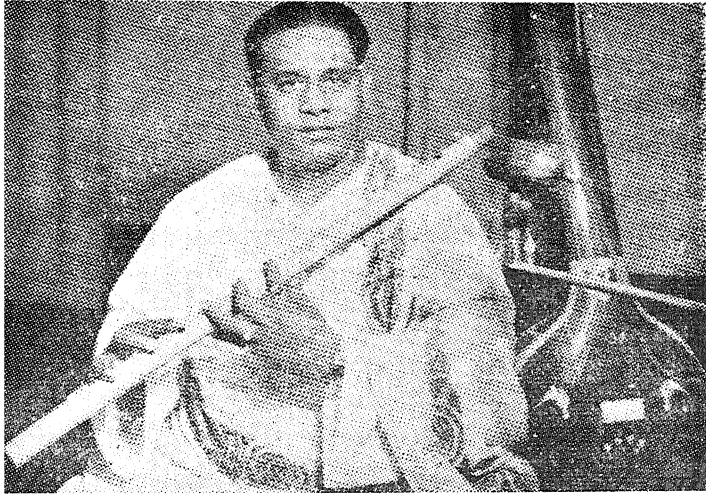
श्री पन्नालाल घोष

विद्यमान है ही साथ ही में रागों के स्पष्टीकरण की अपूर्व क्षमता भी है। यह अत्यधिक विलम्बित लय में वंशी वादन करते हैं, जो अत्यन्त कठिन है। द्रुतलय का काम भी पन्नालाल जी अच्छा दिखलाते हैं।

श्री पन्नालाल का जन्म सन् १९११ में पूर्वी बंगाल में बरीसाल नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता, स्वर्गीय श्री अक्षयकुमार घोष, एक प्रसिद्ध सितार वादक थे। इनकी अभिरुचि बचपन ही से वंशी वादन की ओर थी, और बिना किसी से शिक्षा ग्रहण किये

ही वंशी वादन करने लगे थे। वंशी वादन में निपुणता प्राप्त करने के लिये यह मास्टर खुशी मोहम्मद के शिष्य हो गये।

पन्नालाल जी १२-१३ वर्ष की अवस्था ही से संगीत गोष्ठियों में वंशी वादन करने लगे थे। इन्हें न्यू थियेटर्स में वंशीवादक का पद मिल गया, जहाँ इन्होंने अनेक चित्रों में वंशी वादन किया।

२१ वर्ष की अवस्था में यह एक योग्य वंशी वादक समझे जाने लगे और कलकत्ते के उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में स्वतंत्र वंशी वादन तथा पं० ओमकारनाथ ऐसे गायकों के साथ संगत करने के लिये आमंत्रित किये जाने लगे।

तदुनन्तर इन्हें सराय कला नामक मण्डली के संगीत निर्देशक बनकर योरोपीय देशों की यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ इनके निर्देशन और वंशी वादन की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

सन् १९४० में पन्नालाल जी बम्बई आये और स्थायी रूप से वहीं रहने लगे। यहाँ पर भी इन्हें प्रर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

सन् १९४७ में श्री पन्नालाल, संगीत सम्राट् डा० अलाउद्दीन खाँ के शिष्य हो गये और उनसे नियमित रूप से सीखने लगे। खाँ साहब के नेतृत्व में इन्होंने बहुत उन्नति की। इन्हें दो बार राष्ट्रीय कार्यक्रम में भाग लेने का गौरव भी प्राप्त हुआ।

पन्नाललाल जी सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। अपने विषय में यह किसी को लिखवाना पसन्द नहीं करते, क्योंकि यह अभी तक अपने को विद्यार्थी ही समझते हैं। इनका कहना है कि जीवनियां तो उच्च-कोटि के संगीतज्ञों की लिखी जानी चाहिये, न कि विद्यार्थियों की।

श्री पन्नालाल तीन भाई हैं, जिनमें विपुल घोष और सुनील घोष को गायन का तथा निखिल घोष को तबला वादन का शौक है। इनके प्रमुख शिष्यों में श्री हरीप्रसाद चौधरी, श्री देवेन्द्र भोलेश्वर तथा हरी बेड़ा देसाई हैं।

श्री गजानन राव जोशी

श्री गजानन राव जोशी का जन्म बम्बई में सन् १९१० में हुआ था। इनके पिता श्री अनन्त मनोहर जोशी, एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे और उन्होंने गायन की शिक्षा कैलाशवासी बालकृष्ण बोआजी से प्राप्त की थी।
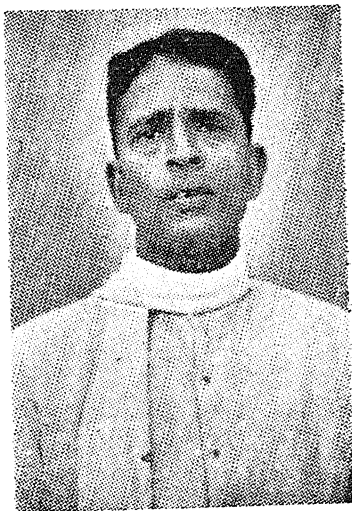
गजानन राव जोशी

गजानन जी की गायन की प्रारम्भिक शिक्षा इनके पिता द्वारा १२ वर्ष की अवस्था से प्रारंभ हुई। पिता जी से पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् यह श्री रामकृष्ण बोआ से सीखने लगे। इनसे इन्होंने लगभग ४ वर्ष तक सीखा और अन्त में गायन सम्राट् उस्ताद अलादिया खाँ के सुपुत्र बुरजी खाँ साहब के शिष्य हो गये। इनसे इन्होंने सतत् परिश्रम और लगन से कई वर्षों तक विद्या प्राप्त की।

अल्प समय ही में इन्होंने गायन के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति कर ली। इनके कार्यक्रम विभिन्न आकाशवाणियों तथा संगीत सम्मेलनों में होने लगे।

जोशी जी ने गायन के साथ ही साथ वेलावादन का भी अभ्यास प्रारम्भ कर दिया और बिना किसी से इस वाद्य यन्त्र की शिक्षा प्राप्त किये ही इन्होंने वेलावादन में अपूर्व ख्याति प्राप्त की। राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी जोशी जी को वेलावदन के लिये आमंत्रित किया गया था।

१ नवम्बर सन् १९५३ को जोशी जी आकाशवाणी बम्बई द्वारा संगीत निर्देशक के पद के लिये आमंत्रित किये गये और तभी से बम्बई में स्थायी रूप से रहने लगे हैं।

जोशी जी के प्रमुख शिष्य और शिष्याओं में श्री श्रीधर परशेकर, श्री डी० आर० निम्बरगी तथा कौशल्या मञ्जेकर है। इनके तीन पुत्र, मनोहर, मधुकर और नारायण हैं, जिनकी क्रमशः अवस्थायें १६, १५, और १२ वर्ष हैं तथा तीन पुत्रियाँ मालती, पुष्पा और अम्बा हैं। इन सभी को जोशी जी स्वयं ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

जोशी जी शान्त प्रकृति के व्यक्ति हैं। यह बहुत ही कम बोलते हैं।

पं० गोपाल मिश्र

वर्त्तमान युग के सारंगी वादकों में काशी के पं० गोपाल मिश्र एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

पं० गोपाल मिश्र खानदानी सारंगी वादक हैं। आपके पिता पण्डित सूरसहाय मिश्र एक प्रसिद्ध सारंगी वादक थे। केवल ११ वर्ष की अवस्था ही से इन्होंने अपने पिता जी द्वारा सारंगी सीखना प्रारम्भ किया अल्प समय ही में इन्होंने सारंगी वादन में विशेष निपुणता प्राप्त कर ली।

पं० गोपाल मिश्र

गोपाल जी ने पर्याप्त समय तक "संगीत सम्राट्" बड़े रामदास जी से भी शिक्षा प्राप्त की और अप्रचलित तथा कठिन रागों में स्वतंत्र सारङ्गी वादन तथा संगत करने में भी दक्षता प्राप्त की।

धीरे-धीरे यह छोटे संगीत सम्मेलनों में भाग लेने लगे। इनके वादन में मिठास तथा संगीत करने की योग्यता देखकर, इन्हें बड़े संगीत सम्मेलनों में भी आमंत्रित किया जाने लगा। २० वर्ष

की अवस्था में इनकी गिन्ती उच्चकोटि के सारङ्गी वादकों में की जाने लगी ।

इन्होंने संगीत सम्मेलनों ही में नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी रियासतों में भी अपनी वादन कला का परिचय दिया । महाराजा कश्मीर, पटियाला, तथा बड़ोदा ने इन्हें आमंत्रित करके सम्मानित भी किया है ।

इन्हें भारत के उच्चकोटि के संगीतज्ञ स्वर्गीय फैयाज खाँ, बड़े गुलाम अली, केसर बाई, हीरा बाई, डी० वी० पलुस्कर आदि के साथ संगत करने का गौरव प्राप्त है ।

गोपाल जी का स्वतंत्र सारंगी वादन भी अत्यन्त रोचक और उच्चकोटि का है । लय और ताल में यह पूरे पक्के हैं । विभिन्न प्रकार की तिहाइयाँ बनाकर सम पकड़ने की इनमें विशेष योग्यता है ।

गोपाल जी एक लम्बी अवधि से विभिन्न आकाशवाणियों से अपना कार्यक्रम प्रसारित करते आ रहे हैं । इनके सारङ्गी वादन के अनेक रिकार्ड भी बन चुके हैं । इनके भाई पं० हनुमान प्रसाद जी भी एक प्रसिद्ध सारङ्गी वादक हैं ।

पं० गोपाल मिश्र एक गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं । अकारण और अधिक बोलना इनके स्वाभाव के प्रतिकूल है । ये अभी ३०-३५ वर्ष के होगें और अभी सारङ्गी वादन के क्षेत्र में इनसे और भी अधिक विकास की आशा है ।

उस्ताद बिसमिल्लाह खाँ

आधुनिक काल के इस संघर्ष मूलक युग में जब कि यथा नमः तथा गुणाः चरितार्थ करने वाले बहुत कम व्यक्ति पाये जाते हैं, श्री बिसमिल्लाह जी इसके लिये अपवाद स्वरूप हैं। फारसी में बिसमिल्लाह शब्द का विग्रह करने पर "बा-इस्म-अल्लाह" ऐसा शब्द पढ़ा जाता है। इस शब्द का अर्थ है "ईश्वर के नाम के साथ।" अर्थात् ईश्वर का नाम लेकर किसी शुभ कार्य को आरम्भ करना।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्वनाम धन्य श्री बिसमिल्लाह जी का नाम अक्षरशः चरितार्थ होता है। जिस प्रकार किसी भी धार्मिक समारोह में ईश्वर का नाम लेकर कार्य आरम्भ किया जाता है, उसी प्रकार संगीत समारोह में ईश्वर के नाम और गुणों को चरितार्थ करने वाले सुप्रसिद्ध कलाकार श्री बिसमिल्लाह जी के वाद्य प्रदर्शन के द्वारा उत्सव का उद्घाटन किया जाता है। वास्तव में कलाकार का महत्व कला से किसी अर्थ में कम नहीं है। जहाँ एक ओर समस्त वाद्य यंत्रों में शहनाई का सर्वोच्च स्थान है, वहाँ दूसरी ओर शहनाई वादकों बिसमिल्लाह जी का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है।

उस्ताद बिसमिल्लाह खाँ के वंश में सुप्रसिद्ध शहनाई वादकों ने जन्म लिया है। इनके दादा-परदादा राजा भोजपुर के यहाँ दरबारी शहनाई वादक थे। बिसमिल्लाह जी का जन्म वहीं पर सन् १९०८ में हुआ था। इनके मामा उस्ताद विलायत हुसेन, सादिक अली तथा अली बक्स भी शहनाई वादन में एक उच्च
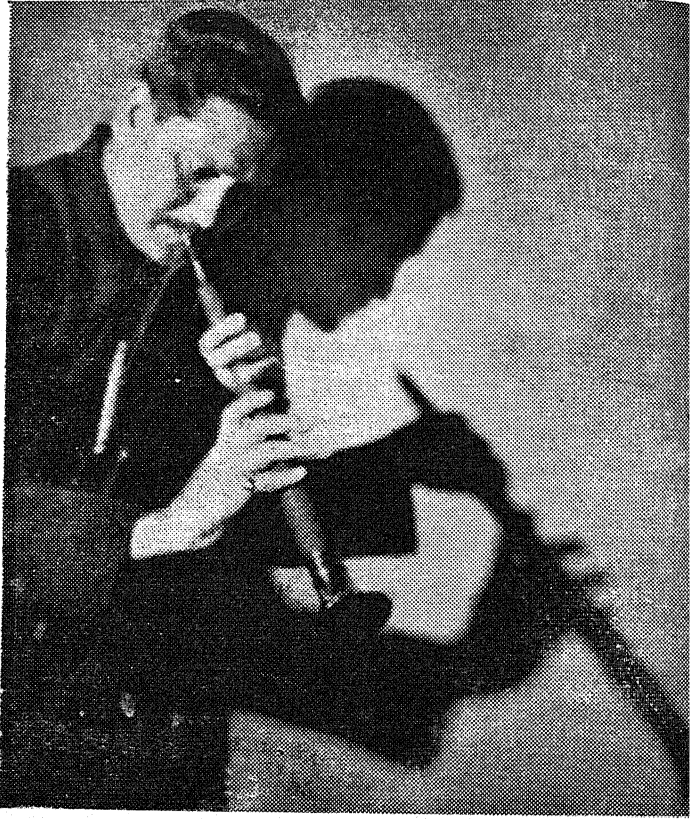
बिसमिल्लाह खाँ

स्थान रखते थे और इनके पिता उस्ताद पैगम्बर बक्स एकलब्ध-प्रतिष्ठ कलाकार थे।

केवल ६ वर्ष की अवस्था से ही श्री बिसमिल्लाह जी ने शहनाई की शिक्षा अपने मामा उस्ताद अलीबक्स द्वारा प्रारम्भ की। यद्यपि इनके मामा तथा पिता की इच्छा इन्हें कुछ पाठशालीय विषयों की शिक्षा देने की भी थी, किन्तु श्री बिसमिल्लाह जी की अभिरुचि उस ओर किञ्चित मात्र भी नहीं थी। यह रात दिन सीखने ही में मस्त रहते थे। थोड़े ही समय में बिसमिल्लाह जी ने शहनाई की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली। जहाँ कहीं भी इनके मामा शहनाई वाद्य प्रदर्शन के लिये आमंत्रित किये जाते, बिसमिल्लाह जी उनके साथ अवश्य जाते थे। इस प्रकार शैशवावस्था ही से संगीत सम्मेलनों में भाग लेने से इन्हें विशेष प्रोत्साहन मिला।

कुशल शहनाई वादन के लिये सभी प्रकार की गायिकी सीखना अनिवार्य है। अन्य प्रकार की गायिकी की शिक्षा तो मामा जी से प्राप्त ही कर चुके थे "ख्याल गायिकी" में दक्ष होने के लिये लखनऊ के उस्ताद मोहम्मद हुसैन साहब की शरण में गये और पर्याप्त विद्या प्राप्त की।

सन् १९२९ में प्रयाग विश्वविद्यालय के संगीत समारोह में अन्य उच्चकोटि के कलाकारों के साथ श्री बिसमिल्लाह जी भी आमंत्रित किये गये। उन्होंने अपने शहनाई वाद्य प्रदर्शन द्वारा श्रोताओं को मन्त्र मुग्धकर दिया। यहाँ पर इन्हें बहुत से पदक तथा प्रमाण-पत्र पारितोषिक के रूप में प्रदान किये गये। यहाँ से बिसमिल्लाह जी की प्रसिद्धि इतनी फैली कि इन्होंने अनेक संगीत सम्मेलनों का बिसमिल्लाह स्वयं ही किया और यह आज तक लगभग सभी अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित

किये जा रहे। इनका तीन बार आकाशवाणी दिल्ली के राष्ट्रीय कार्यक्रम में शहनाई वादन हो चुका है।

श्री बिसमिल्लाह जी के स्वर्गीय भाई उस्ताद शमशुद्दीन भी शहनाई के एक अच्छे कलाकार थे। यद्यपि दोनों भाइयों ने एक ही गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु दोनों की वाद्य प्रदर्शन की शैली भिन्न थी। यह युगल जोड़ी सभी सम्मेलनों में एक ही साथ जाकर श्रोताओं का मनोरञ्जन करती थी। अभाग्यवश बिसमिल्लाह जी के भाई इन्हें अकेला छोड़कर स्वर्गलोक को सिधार गये। इनकी मृत्यु से बिसमिल्लाह जी को हार्दिक कष्ट हुआ और इन्होंने शहनाई वादन एक दम ही बन्द कर दिया। परन्तु संगीत प्रेमियों के आग्रह से आपने पुनः शहनाई वादन प्रारम्भ कर दिया। आज भी जब उन्हें भाई की याद आती है, तो उनकी आँखों से अनायास ही आँसू गिर पड़ते हैं।

प्रत्येक शहनाई पार्टी में ४-५ व्यक्ति होते हैं। श्री बिसमिल्लाह जी की पार्टी में चार सहायक हैं (१) श्री मोतीलाल (२) श्री जगदीश (३) फजलखाँ गुर्रानी (४) इमदादखाँ

श्री मोतीलाल जी खुरदक बजाने में दक्ष हैं।

बिसमिल्लाह जी अपने शहनाई वादन के साथ खुरदक की संगत दो कारणों से पसन्द करते हैं। उनका कहना है कि प्राचीन युग में तबला नहीं था, इसीलिये शहनाई के साथ खुरदक की संगत की जाती थी। अतः वह पूर्वजों द्वारा बनाये गये बजाने के नियमों में रद्दोबदल नहीं करना चाहते। उनका दूसरा मत यह है कि तबले पर आघात करने पर उसकी निकली हुई आवाज़ देर तक गूँजती है, परन्तु खुरदक पर आघात करने पर आवाज़ तुरन्त ही बन्द हो जाती है। चूँकि शहनाई वादन श्वास के न्यून या अधिक होने पर निर्भर करता है, इसलिये शहनाई के नाद की

ऊँचाई या निचाई घटती-बढ़ती रहती है। तबले के साथ संगत करने का फल यह होता है कि शहनाई और तबला एक ही स्वर में मिले रहने पर भी उनके स्वर का एकाकार नहीं होने पाते। इससे शहनाई वादन की समस्त शोभा नष्ट हो जाती है।

बिसमिल्लाह जी का कथन है कि शहनाई वादक के लिये स्वस्थ रहना आवश्यक हैं। प्रत्येक वादक को चाहिये कि वह खूब व्यायाम करे और पौष्टिक पदार्थों का सेवन करे। गोश्त तथा अन्य खाद्य पदार्थ अहितकर होते हैं। दुग्ध एवं शाक-सब्जी का प्रयोग लाभप्रद है। लोगों का यह विचार कि शहनाई फेफड़ों को कमजोर करती है निमूल है।

बिसमिल्लाह जी ने अपने निवास-स्थान पर शहनाई की शिक्षा प्रदान करने के लिये एक पाठशाला खोली है। आपका कहना कि १० वर्ष में समस्त भारत में शहनाई का खूब प्रचार कर देंगे। यद्यपि लोगों ने अन्य वाद्य यन्त्रों को बड़ी खुशी से अपनाया है, किन्तु शहनाई से अभी तक दूर ही रहे हैं, परन्तु बिसमिल्लाह जी उन्हें शीघ्र ही अपनी ओर आकर्षित करने की इच्छा रखते हैं।

विलायत हुसेन खाँ

भारतीय वाद्य यंत्रों में सितार का अभ्यास अत्यन्त दुषकर एवं कष्ट साध्य होता है। बहुत काल तक अभ्यास करने के पश्चात् भी बहुत कम ऐसे सितार वादक मिलते हैं जो वादन कला का यथेष्ठ प्रदर्शन कर श्रोताओं पर प्रभाव डाल सकते हों। यह केवल उन्हीं वादकों के लिये संभव है जिनमें कला बीज अथवा संस्कार रूप से ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा विद्यमान रहती है। उस्ताद विलायत खाँ भी उन्हीं इने-गिने कलाकारों में से हैं, जो अपने अनुपम सितार वादन से श्रोताओं को मंत्र मुग्ध करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं। इनका सितार वादन अत्यन्त उच्चकोटि का है और उसमें उनके घराने की बन्दिशों का समावेश है, जो संगीत के इतिहास में शताब्दियों से सुविख्यात होता आया है।

विलायत हुसेन खाँ

अधिकतर सितार वादकों की प्रकृति कठिन और अप्रचिलित रागों के बजाने की होती है, किन्तु उनका वादन बोधगम्य न होने से श्रोताओं पर उनका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ पाता। उस्ताद विलायत हुसेन खाँ की बादन शैली अन्य सितार वादकों से भिन्न है। वह वादन करते समय रागों का निर्वाचन बड़ी सतर्कता के साथ करते हैं। अधिकतर वह ऐसे ही रागों का निर्वाचन करते हैं,

जिन्हें साधारण से साधारण श्रोता भी सरलता पूर्वक समझ सके। सरल रागों को लेकर उनमें विभिन्न ध्वनि वैचित्र्य भरकर, वह इतना आकर्षक और मधुर बना देते हैं कि श्रोता आनन्द विभोर हो उठते हैं।

उस्ताद विलायत खाँ का जन्म कलकत्ते में सन् १६२४ में हुआ था। यह खानदानी सितार वादक हैं। इनके पिता उस्ताद इनायत हुसेन खाँ, दादा इमदाद हुसेन खाँ तथा परदादा साहब खाँ की गणना भारत के महान सितार वादकों में की जाती है। वाल्यावस्था से ही विलायत खाँ की अभिरुचि सितार वादन की ओर थी। इनके पिता द्वारा ही इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ हुई। इनायत हुसेन खाँ जहाँ कहीं सितार वाद्य प्रदर्शन के लिये आमंत्रित किये जाते वह बालक विलायत को अपने साथ अवश्य ले जाते थे। इस प्रकार से वाल्यावस्था ही से विलायत खाँ साहब को रंगमंच का भय जाता रहा।

अभाग्यवश इनके पिता इन्हें १३ वर्ष का ही छोड़कर स्वर्गवासी हो गये जिससे बालक विलायत को अत्यधिक दुख हुआ। इनकी माता जी ने धैर्य और दूरदर्शिता से काम लिया और बालक विलायत की शिक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर ले लिया। इनकी माता जी स्वयं एक योग्य और संगीत के सिद्धान्तों पर अधिकार रखने वाली महिला हैं। इन्होंने संगीत की शिक्षा अपने पिता उस्ताद बन्दे हुसेन खाँ साहब से प्राप्त की थी। वह बालक विलायत खाँ को अत्यधिक अभ्यास करने के लिये वाध्य करतीं और सदैव उनके पिता और दादा आदि के विषय में बतलातीं कि उन्होंने किस प्रकार से अभ्यास करके अपना नाम अमर कर दिया है। जब कभी विलायत खाँ बजाते-बजाते थक कर सो जाते तो उनकी माता जी बिजली का तार छुआ देतीं जिससे चौंककर वह पुनः अभ्यास

करने लगते। खाँ साहब का कथन है कि इन्होंने कभी-कभी १८ घंटों तक भी अभ्यास किया है।

अल्पकाल ही में विलायत खाँ साहब ने अपने अनुपम सितार वादन के लिये समस्त भारत में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों, तथा आकाशवाणियों से यह अपने कार्यक्रम के लिये आमंत्रित किये जाने लगे।

खाँ साहब ने अपनी कलात्मक प्रतिभा से न केवल भारत ही में ख्याति प्राप्त की है, अपितु विदेशों में जाकर भी अपने अनुपम सितार वादन से वहाँ के निवासियों को प्रभावित कर भारत का नत मस्तक ऊँचा किया है। सन् १९५१ में इन्होंने पूर्वी अफ्रीका, योरप और इङ्गलैंड की यात्रा की और गत जुलाई मास में शान्ति सम्मेलन की ओर से चीन गये थे। सभी जगह इनके सितार वादन की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई।

खाँ साहब का कथन है कि आजकल कुछ लोगों की धारणा भारतीय संगीत को पाश्चात्य संगीत से ऊँचा बतलाने की है और कुछ की इसके विपरीत। उन्होंने दोनों देशों के संगीत का अध्ययन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि दोनों संगीत अपने अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं। दोनों की विशेषतायें अलग-अलग हैं और तुलना सदैव एक समान चीज़ों की ही की जाती है। इसलिये किसी एक को बड़ा या छोटा बनाना उचित नहीं है। भारतीय संगीत में एक-एक स्वर के द्वारा कलाकार अपने हृदय के भावों को व्यक्त करता है, जब कि पश्चात्य संगीत में अनेक स्वर समुदायों के साथ वह कलाकार भाव प्रगट करता है।

खाँ साहब एक कुशल सितार वादक ही नहीं, अपितु एक अच्छे गायक और कवि भी हैं। पहले आकाशवाणी दिल्ली से

इनके गायन के कार्यक्रम प्रसारित होते थे, परन्तु गला खराब हो जाने के कारण अब कार्यक्रम नहीं देते। इन्होंने अनेक गज़लों और गीतों की स्वयं रचना की है जिसको यह अवकाश के समय बड़े प्रेम से सुनाते हैं।

खाँ साहब ने अभी तक विवाह नहीं किया है और अभी कुछ दिन और बेफिक्री का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। इनके छोटे भाई, इमरात खाँ, जिन्हें यह स्वयं ही शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, सितार वादन के क्षेत्र में इस अल्पावस्था ही में पर्याप्त उन्नति कर चुके हैं।

खाँ साहब के प्रमुख शिष्य और शिष्याओं में श्री काशीनाथ बनरजी, अरविन्द पारीक तथा सुश्री कल्याणी राय हैं।

खाँ साहब अत्यन्त सरल स्वभाव के व्यक्ति हैं। यह अपनी माता जी से विशेष श्रद्धा रखते हैं। इनका कथन है कि अभी तक मैं उनसे पूरी शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाया हूँ।

श्री माधो सिंह

माधो सिंह जी अपने अनुपम पखावज वादन के लिये विख्यात हैं। यह स्वर्गीय पखावजाचार्य श्री पर्वत सिंह जी के पुत्र हैं। इनके वंश में उच्चकोटि के पखावजियों ने जन्म लिया है। माधो सिंह जी के परदादा स्वर्गीय श्री जोरावर सिंह जी भारत के श्रेष्ठ पखावजियों में से थे। वह फरुखाबाद के नवाब हसमत जंग के यहाँ दरबारी कलाकार थे। इनके वादन की प्रसिद्धि सुनकर लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह ने इन्हें अपना दरबारी संगीतज्ञ बना लिया। ग्वालियर नरेश, जो नवाब से मिलने आये थे, इन्हें अपने यहाँ ले गये। इनकी वादन कला पर प्रसन्न होकर "सिंह" की पदवी प्रदान की। यही कारण है कि ब्राह्मण होते हुए भी इनके वंश के सभी लोग "सिंह" लिखने में अपना गौरव समझते हैं।

माधो सिंह जी ने केवल ५ वर्ष की अवस्था से ही अपने दादा जी द्वारा पखावज वादन की शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। इन्होंने आगे चलकर अपने पिता जी से पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की। १२ वर्ष की अवस्था से यह गायकों तथा वादकों के साथ संगत करने लगे।

बम्बई रेडियो स्टेशन के उद्घाटन के समय पर भाई शंकर गवैया के साथ संगत करने के लिये आमंत्रित किये गये थे। वहाँ इन्होंने स्वतंत्र पखावज प्रदर्शन भी किया।

इसके पश्चात् श्री माधो सिंह श्रीमती हीराबाई के साथ पखावज वाद्य प्रदर्शन के लिये गोआ गये। तदनन्तर यह अनेक संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये गये और वहाँ इन्हें उच्चकोटि के

माधो सिंह

कलाकार उस्ताद अलाउद्दीन उस्ताद हाफिज़ अली खाँ, नटराज जयलाल, सारङ्गी वादक बुन्दू खाँ के साथ संगत करने का गौरव प्राप्त हुआ।

सन् १६२० में माधो सिंह जी ने बम्बई के एक विराट संगीत सम्मेलन में स्वर्गीय श्री भातखन्डे जी के साथ अत्यन्त सुन्दर संगत करके "पखावजाचार्य" की उपाधि प्राप्त की।

इनके पिता जी के बूढ़े हो जाने के कारण ग्वालियर नरेश ने माधो सिंह जी को आमंत्रित किया। उसी समय से यह ग्वालियर में हैं। आजकल माधो संगीत विद्यालय में यह अध्यापन का कार्य भी करते हैं।

माधो सिंह जी को न केवल पखावज ही का पूर्ण ज्ञान है, अपितु तबला वादन तथा नृत्य की अच्छी जानकारी है। उन्हीं के दृढ़ परिश्रम का फल है कि उनके शिष्य भी सुविख्यात संगीतज्ञ हैं। माधो संगीत विद्यालय के आचार्य श्री बाबूलाल गुप्ता, कमला-राजा गर्ल्स कालिज के नृत्य के आचार्य बाबू साहब शिन्डे, कानपुर के श्री वृन्दावन लाल, आगरा के श्री बी० के० राय, बम्बई के श्री वसन्त पितकर, तथा झाँसी की श्यामा बनरजी, मीरा बनरजी आदि शिष्य और शिष्यायें हैं। जिनमें गायक, वादक तथा नृत्यकार हैं।

इस समय माधो सिंह जी की अवस्था ५० वर्ष के लगभग है। इनके शरीर की गठन, लम्बी भुजायें तथा विशाल वक्षस्थल और बड़ी-बड़ी मूछों से इनका व्यक्तित्व रोबीला प्रतीत होता है।

माधो सिंह जी का कथन है कि ब्रह्मा ने त्रिपुरा सुर के रक्त से मिट्टी सानकर चमड़े का मेवड़ा बनवाया और उसी की हड्डी से पूड़ी और बद्धी बनवाई। इसी कारण इस घन वाद्य यंत्र का नाम "मृदङ्ग" अर्थात् 'मृत है अंग' पड़ा है।

उस्ताद अहमद जान थिरकवा

यद्यपि हमारे देश में अनेक सुविख्यात तबला वादक है, तथापि जो ख्याति उस्ताद अहमद जान थिरकवा को उपलब्ध हुई है वह अत्यन्त स्तुत्य एवं प्रशंसनीय हैं। यह सर्व प्रथम तबला वादक हैं, जिन्हें आफताबे मौसीकी उपाधि से सम्मानित किया गया है। इस वर्ष इनकी गणना भारत के श्रेष्ठ कलाकारों में की गई और इन्हें राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद द्वारा एक दुशाला तथा प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया गया है। इसी से इनकी महानता, कला कुशलता एवं योग्यता का परिचय मिलता है।

अहमद जान थिरकवा

उस्ताद अहमद जान थिरकवा का जन्म मुरादाबाद में १८९५ में हुआ था। १२ वर्ष की आयु में इनके पिता ने बम्बई के सुप्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद मुनीर खाँ का शिष्य बना दिया। १३ वर्ष तक इन्होंने कठिन परिश्रम एवं लगन से विद्या प्राप्त की। २५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने मुरादाबाद के विराट संगीत सम्मेलन में सर्व प्रथम तबला वादन करके ख्याति प्राप्त की।

इसके पश्चात् इनके पिता ने चाचा उस्ताद शेर खाँ के पास बम्बई भेज दिया। उनके निर्देशन में इन्होंने बहुत समय तक अभ्यास किया और अपनी कुशलता का परिचय बम्बई के विभिन्न संगीत सम्मेलनों में देते रहे। रणजीत मूवीटोन के "जय भारत" चित्र में इन्होंने रंगमंच पर तबला वादन करके अपूर्व ख्याति प्राप्त की।

उस्ताद अहमद जान को भारत के सभी विराट संगीत सम्मेलनों में भाग लेने तथा उच्चकोटि के कलाकारों के साथ संगत करने का गौरव प्राप्त है। विभिन्न आकाशवाणियों से इनके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। इनके तबला वादन की प्रशंसा सुनकर नवाब रामपुर ने इन्हें १९३७ में अपना दरबारी संगीतज्ञ बना लिया। उसी समय से यह वहीं पर हैं।

प्रारंभ में यह तीन भाई थे किन्तु इनके एक भाई की पर्याप्त समय हुआ मृत्यु हो गई। इनके छोटे भाई उस्ताद मोहम्मद जान भी एक कुशल तबला वादक हैं और आकाशवाणी दिल्ली के स्थायी कलाकार भी हैं। इन्हें उस्ताद अहमद जान ने ही शिक्षा प्रदान की है।

उस्ताद अहमद जान थिरकवा के ३ पुत्र हैं नबी जान, जिनकी अवस्था ३२ वर्ष के लगभग है। यह अकाशवाणी लखनऊ के स्थायी कलाकार हैं। महमूद जान २५ वर्ष के लगभग हैं। इन्होंने भी तबले की पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की है। सबसे छोटे अली जान हैं, जो अभी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

इनके प्रमुख शिष्यों में आकाशवाणी लखनऊ के रोजवेल लायल हैं, जिन्होंने तबला वादन में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की है।

श्री कण्ठे महाराज

भारतीय तबला वादकों में काशी निवासी श्री कण्ठे महाराज का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने लगभग सभी श्रेष्ठ संगीतज्ञों के साथ सफलतापूर्वक संगत की है। इनका स्वतंत्र तबला वाद्य प्रदर्शन भी अत्यन्त उच्चकोटि का है।

श्री कण्ठे महाराज

यह कई अप्रचलित तालों में स्वतंत्र तबला वादन भी करते है। ११,१५, तथा २१½ मात्रा की पटतालों में भी इनका स्वतंत्र तबला वादन सुनते ही बनता है। कठिन से कठिन तालों में भी तिहाई का काम बहुत सुन्दरता के साथ दिखलाते हैं।
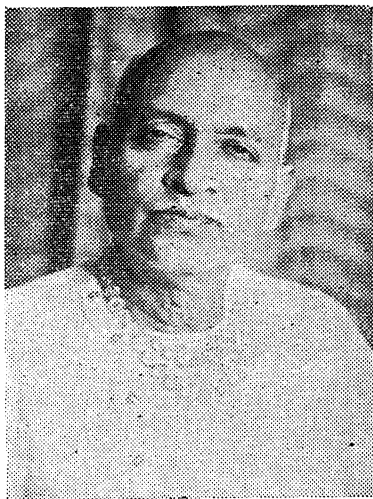
तबला वादन करते समय यह बहुत ही प्रसन्न चित्त दिखलाई पड़ते हैं। यही कारण है कि इनके तबला वादन में तबियतदारी की मात्रा विशेष रूप से है।

श्री कण्ठे महाराज का जन्म काशी में हुआ है। उत्पन्न होने के पूर्व इनकी माता जी को बिजली के तार की भाँति एक चमकीली

वस्तु दिखलाई पड़ी, जिससे वह भयभीय हो गई थीं। परन्तु ज्योतिषी ने इनके पिता श्री दिलीप जी से बतलाया कि श्री कण्ठे महाराज का जन्म बहुत ही शुभ नक्षत्र में हुआ है। यह आगे चलकर सुप्रसिद्ध कलाकार होंगे।

कण्ठे महाराज के एक ज्येष्ठ भाई श्री माधो प्रसाद तथा एक छोटे भाई श्री हरी प्रसाद जी स्वर्गवासी हो चुके हैं। श्री माधो प्रसाद जी अल्पावस्था ही से अच्छा तबला बजाने लगे थे। जिस दिन इनके छोटे भाई हरि प्रसाद जी की "बरही" की खुशियाँ मनाई जी रही थी, उसी दिन श्री माधो प्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। इनकी मृत्यु से दिलीप जी को अत्यधिक कष्ट हुआ।

लोगों ने कण्ठे महाराज को उनकी गोद में देते हुए कहा "अब आप कण्ठे महाराज को ही सब कुछ समझिये।" परन्तु दिलीप जी ने कण्ठे महाराज को अपनी गोद से ढकेल दिया, जिससे उनके मस्तक में चोट लगी।

कण्ठे महाराज इस बात को सहन नहीं कर सके और तुरन्त ही कमरे में जाकर तबले की जोड़ी उठा लाये उस समय इनकी अवस्था लगभग ८ वर्ष की रही होगी। यह अपने बड़े भाई का तबला वादन देख देखकर ही बहुत सीख चुके थे, जिसकी सूचना इनके पिता को किंचित मात्र भी नहीं थी। उन्होंने जब बालक कण्ठे का तबला वादन सुना तो आश्चर्य में पड़ गये और अपने हृदय से लगाकर बोले "तू अवश्य ही एक अच्छा तबला वादक होगा।"

श्री दिलीप जी ने अपने भानजे, श्री बलदेव सहाय जी को, जो तबले के प्रकांड पण्डित थे, कण्ठे महाराज को विद्याध्ययन के लिये समर्पित कर दिया। इन्हीं से कण्ठे महाराज ने १०-१२ वर्ष तक सीखा। उन्हीं से आपको तबले के अपार बोलों का संग्रह भी प्राप्त हुआ।

उपर्युक्त बोलों को लिखकर अथवा याद करके ही सन्तुष्ट न होकर, कण्ठे जी ने उन बोलों में से प्रत्येक का अक्षरशः निरन्तर अभ्यास किया। केवल भोजनादि तथा अन्य आवश्यक कामों को छोड़कर इन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षण को अभ्यास में व्यतीत किया।

यह अभ्यास इतना अधिक करते थे कि इनके सीधे हाथ की तर्जनी उँगली से रक्त प्रवाहित होने लगता था। इनकी यह उँगली कई बार पकी, जिसके फलस्वरूप इन्हें ७ बार उसका आपरेशन करना पड़ा। इस समय इनकी यह उँगली लोहे की भाँति कठोर हो गई है।

३५ वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इनके कोई पुत्र अथवा पुत्री जीवित नहीं थी, इसलिये इनके परिवार के सदस्यों ने पुनः विवाह करने के लिये इन्हें विवश किया; किन्तु इन्होंने विवाहकर ना अस्वीकार कर दिया। आगे चलकर छोटे भाई श्री प्रसाद जी के यहाँ कृष्ण महाराज का जन्म हुआ, जिन्हें मरते समय हरी प्रसाद जी कण्ठे महाराज को सौंप गये। श्री कण्ठे महाराज ने कृष्ण महाराज का लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया है, और तबले की पर्याप्त शिक्षा भी प्रदान की है।

इस समय श्री कण्ठे महाराज की अवस्था ७० वर्ष के लगभग है, परन्तु फिर भी यह बहुत तैयारी के साथ तबला वादन करते हैं। प्रातः काल का यह अपना पर्याप्त समय पूजा-पाठ तथा आरती में व्यतीत करते हैं।

उस्ताद हबीबउद्दीन

सफल तबला वादक वही कहलाता है, जो गायक, वादक तथा नर्तक के साथ संगत करने की अपूर्व क्षमता रखता हो। स्वतंत्र तबला वादन तो अभ्यास के द्वारा सिद्ध हो सकता है, किन्तु संगत करने की कला, केवल अभ्यास से ही सिद्ध नहीं होती। क्योंकि संगत के द्वारा कलाकार अपने हृदय के भावों और कल्पनाओं को अभिव्यक्त करता है। ये भाव और कल्पनायें संगीत में "उपज" के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह "उपज" ईश्वरीय देन होती है। इसीलिये संगत करने में कुशलता प्राप्त करना साधारण कार्य नहीं है।

हबीबउद्दीन

वादन कला का गायन, वादन तथा नृत्य कला के साथ सामान्यात्मक सामंजस्य स्थापित करना ही संगत कहा जाता है। यह वास्तविक संगीत की सबसे बड़ी विशेषता है। कुशल संगतकार से गायक, वादक तथा नर्तक की उद्भावना तथा प्रोत्साहन मिलता है जो उसकी कला को अत्यन्त परिषकृत एवं आकर्षित बना देती है। उस्ताद हबीबउद्दीन, तबले की अनुपम संगत के लिये समस्त भारत में विख्यात हैं और संगत करने की सुन्दर कला के कारण ही 'संगत सम्राट्" के नाम से सुविख्यात हुए हैं।

उस्ताद हबीबउद्दीन का जन्म मेरठ में हुआ है। यह खानदानी तबला वादक हैं। इनके वंश में सुप्रसिद्ध तबला वादकों ने जन्म लिया है। जिनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। इनके घराने की एक नवीन वादन शैली जो दिल्ली घराने की वादन शैली से मिलती-जुलती होने पर भी अपनी एक विशेषता रखती है। यह वादन शैली "अजराड़ा" के नाम से विख्यात है। दिल्ली निवासी श्री बुगरा खाँ के सुपुत्र उस्ताद शिताब खाँ के शिष्यों द्वारा इस घराने की नींव पड़ी थी। इनके दो प्रमुख शिष्य उस्ताद कल्लू खाँ व मीरू खाँ, जो कि अजराड़ा गाँव के निवासी थे, सुप्रसिद्ध हो तबला वादक गये हैं। इसी वंश में अनेक सुविख्यात तबला वादकों ने जन्म लिया है। उस्ताद शम्मू खाँ अपने युग के बहुत गुणी तबला वादक समझे जाते थे। इन्हीं के सुयोग्य पुत्र उस्ताद हबीबउद्दीन खाँ है।

उस्ताद हबीबउद्दीन ने केवल ८ वर्ष की अल्पावस्था से ही अपने पिता जी द्वारा तबले की शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ किया था यह बचपन से ही बहुत परिश्रमी हैं। पिता जी द्वारा इन्होंने १८ वर्ष तक सीखा, किन्तु उनके स्वर्गवासी हो जाने से अधिक नहीं सीख सके। जो कुछ विद्या इन्होंने प्राप्त की थी उससे इन्हें किंचित मात्र भी संतोष नहीं था। इसलिये यह दिल्ली के उस्ताद बड़े काले खाँ के पौत्र नत्थू खाँ साहब के पास विद्याध्ययन के लिये गये। उनसे भी इन्होंने बहुत समय तक सीखा।

यद्यपि २८ वर्ष की अवस्था ही में उस्ताद हबीबउद्दीन एक अच्छे कलाकार हो गये थे थापि वादन कला की उच्चतम विद्या प्राप्त करने की जिज्ञासा कम नही हुई। इन्होंने अपने हृदय में एक उच्च कलाकार बनने का प्रण किया और ५ वर्ष तक "चिल्ला" खींचा (दृढ़ संकल्प करके किसी कार्य की पूर्त्ति करने के लिये

संलग्न हो जाना) ये एकान्त में बैठकर तबले का अभ्यास करने लगे। किसी-किसी दिन तक इन्होंने १८ या २० घन्टे तक तबला बजाया।

इन पाँच वर्षों के निरन्तर अभ्यास के पश्चात् हबीबउद्दीन एक महान् कलाकर के रूप में संगीत के रंगमंच पर अवतरित हुए। सभी उच्चकोटि के संगीत सम्मेलनों में भाग लेने के लिये ये उसी समय से आज तक आमंत्रित किये जाते हैं। सभी महान कलाकारों के साथ सुन्दर संगत करने का इन्हें गौरव प्राप्त है।

उस्ताद हबीबउद्दीन का स्वतंत्र तबला वादन भी अत्यन्त उच्चकोटि का है। यह कठिन-कठिन तालों में भी स्वतंत्र तबला वादन करते हैं।

इस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष के लगभग है इस अवस्था में भी ये हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ हैं।

पण्डित श्यामता प्रसाद (गुदई महाराज)

आज के प्रगतिशील तबला वादकों में बनारस के सुप्रसिद्ध तबला वादक पं० श्यामता प्रसाद जी का नाम सर्वप्रथम आता है। तबले पर नाना प्रकार की कलाओं के दिखाने में आप दक्ष हैं। तबला वादन के द्वारा तूफान मेल की चाल दिखाना, पानी का बरसाना और बिजली का कड़कना दिखाना तो आपके बायें हाथ का खेल है। यह कठिन से कठिन तालों में स्वतंत्र तबला वादन करते हैं। इनके स्वतंत्र तबला वादन की विशेषता यह है कि कई घन्टों तक तबला वादन करने पर भी श्रोता ऊबने का नाम नहीं लेते हैं। इसीलिये इन्हें "सोलो सम्राट्" के नाम से भी पुकारा जाता है। आपको भारत के सभी उच्चकोटि के संगीतज्ञों के साथ सफल संगत करने का गौरव प्राप्त है। आपके अनुपम कला प्रदर्शन से प्रसन्न होकर बिहार केभूतपूर्व गवर्नर श्री अणे ने प्रमाण-पत्र भी प्रदान किया है। चित्र निर्माता श्री वी० शान्ताराम ने अपने रंगीन चित्र "नर्तक" जो शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य पर आधारित है, तबला वादन के लिये चुना है। यह चित्र शीघ्र ही प्रदर्शन के लिये आने वाला है।

गुदई महाराज

गुदई महाराज खानदानी तबला वादक हैं। आपके पूर्वज ७

पुश्त से तबले के प्रकाण्ड पण्डित होते आये हैं। आपके परदादा प्रतापु महाराज पण्डित रामसहाय महाराज के शिष्य थे। पण्डित रामसहाय जी ने लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के यहाँ सात दिन और सात रात तक तबला बजाकर अपना रिकार्ड कायम किया था। इस अवसर ५,००० तबला वादकों ने आपकी भुजाओं की पूजा करके सम्मानित किया था।

गुदई महाराज का जन्म काशी में हुआ था। इनके पिता पण्डित वाचा मिश्र जो तबले के प्रकाण्ड पण्डित थे, इन्हें केवल ८ वर्ष की अवस्था ही में छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। फलतः गुदई महाराज को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आप अपने पिता से केवल दो चार तालें और उनके कायदे ही सीख पाये थे। गुदई महाराज को बिक्कू महाराज की शरण में जाना पड़ा। बिक्कू महाराज ने बड़े प्रेम से गुदई महाराज को तबला सिखाया, जिसके लिये यह सदैव उनकी प्रशंसा के गीत गाते हैं।

कलकत्ते की "तानसेन-विष्णु दिगम्बर कान्फ्रेंस" में गुदई महाराज ने सर्वप्रथम जनता के सम्मुख आकर अपनी कला का प्रदर्शन किया। यहाँ से यह ऐसे चमके कि समस्त संगीत सम्मेलनों से आमंत्रण आने लगे।

आकशवाणी प्रयाग ने इन्हें श्रीमती गंगूबाई हँगल के साथ संगत करने के लिये आमंत्रित किया और तभी से यह वहाँ पर बराबर आमंत्रित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से प्रायः इनके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं।

इनकी अवस्था लगभग ३२ वर्ष की है। हास्य के यह बहुत प्रेमी हैं। बातचीत के दौरान में एक न एक मीठी चुटकी अवश्य लेते हैं। अभी तक अपने आपको विद्यार्थी बताने में ही गर्व करते हैं।

श्रीमती सितारा देवी

श्रीमती सितारा देवी एक कुशल अभिनेत्री ही नहीं, अपितु शास्त्रीय नृत्य की सफल कलाकार भी हैं। इनके नृत्य की प्रशंसा स्वर्गीय गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्री एस० के० पाटिल तथा मेजर करिअप्पा आदि महान पुरुषों ने की है।

शास्त्रीय नृत्य कलाकारों में एक उच्च स्थान रखने के नाते, हम श्रीमती सितारा देवी को कुशल अभिनेत्री होने से भी कहीं अधिक महत्व देते हैं। अतः इस पुस्तक में इनके कलात्मक जीवन के विषय में लिखना ही समीचीन होगा।

श्रीमती सितारा देवी का जन्म काशी में हुआ था। इनके पिता श्रीयुत सुखदेव सहाय जी कत्थक नृत्य के विशेषज्ञ कहे जाते हैं। यद्यपि सितारा देवी का पालन पोषण संगीतमय वतावरण में हुआ तथापि ८, ९ वर्ष की अवस्था तक न तो इनका ध्यान गायन की ओर, और न तो नृत्य की ओर ही आकर्षित हुआ था। इनकी अभिरुचि पाठशालीय पुस्तकों के अध्ययन की ओर थी। जब कभी इनकी बड़ी बहिनें अलखनन्दा तथा तारादेवी नृत्य करतीं, तो उसे उत्सुकता तथा जिज्ञासा के साथ अवश्य देखती थीं, परन्तु स्वयं उसका अभ्यास नहीं करती थीं।

एक बार कमच्छा गर्ल्स हाई स्कूल बनारस में गायन और नृत्य का विशेष कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा था। उस समय श्रीमती सितारा देवी की अवस्था लगभग ९ वर्ष की थी। इस संगीत कार्यक्रम के लिये अध्यापक महोदय कुछ लड़कियों को नृत्य प्रस्तुत करने की शिक्षा दे रहे थे। श्रीमती सितारा देवी उस रिहर्सल

सितारा देवी

को देखने में संलग्न थी। इन्होंने शिक्षक महोदय से प्रार्थना की कि यदि इनकी बताई विधि से इस सामूहिक नृत्य को नवीन रूप दिया जाय तो यह अधिक प्रभावशाली बन सकेगा। शिक्षक महोदय इस बालिका की विलक्षण बुद्धि देखकर विस्मित हो गये और उन्होंने उस नृत्य के निर्देशन का कार्य इन्हीं पर सौंप दिया।

बालिका सितारा ने ८ लड़कियों के सामूहिक नृत्य को इतनी सुन्दरता से प्रस्तुत किया कि दर्शक आश्चर्य चकित रह गये। इनकी प्रशंसा समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुई। जब इनके पिता जी ने यह समाचार पढ़ा तो वह भी आश्चर्य में पड़ गये। उसी दिन से श्री सुखदेव महाराज ने इनकी नृत्य शिक्षा नियमित रूप से प्रारंभ कर दी और इनकी बड़ी बहिन तारादेवी को इनको अभ्यास कराने का आदेश दिया। सितारा देवी लगन और परिश्रम से अभ्यास करने लगीं। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि इन्हें जो कुछ बतलाया जाता था वह तुरन्त याद हो जाता था।

१२ वर्ष की अवस्था में ये अपने पिता जी के साथ कलकत्ते चली गईं। वहाँ इन्होंने अनेक विराट् संगीत सम्मेलनों में अपनी नृत्यकला का प्रदर्शन करके ख्याति प्राप्त की। यहीं पर इन्हें नटराज शम्भू महाराज से विद्या प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप इनकी नृत्य कला और भी निखर उठी।

इसके पश्चात् इन्हें बम्बई जाने का अवसर मिला। इनकी हार्दिक इच्छा चलचित्रों में अभिनय करने की थी और भाग्यवश इन्हें वह अवसर भी प्राप्त हुआ। "अलहिलाल" इनका पहिला चित्र था जिसमें इनका सर्वप्रथम अभिनय सफल रहा। "नजमा" तथा "वतन" में इन्हें वर्ष के सर्वश्रेष्ठ अभिनय करने का प्रमाण-पत्र मिला। अभिनय में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण इन्हें नृत्य करने

का अभ्यास बहुत ही कम मिलता था। धीरे-धीरे इन्हें नृत्याभ्यास बिलकुल ही बन्द कर देना पड़ा।

सन् १६४८ में इनके पिता जी बम्बई आये और इनसे नृत्याभ्यास के विषय में पूछा। इन्होंने बतलाया कि वह सब कुछ भूल चुकी हैं, पिता जी को यह जानकर अत्यधिक दुख हुआ। श्रीमती सितारादेवी को भी अपनी त्रुटि का अनुभव हुआ। इन्होंने अनुभव किया कि अभिनेत्री का जीवन अल्पकालिक होता है, जब कि शास्त्रीय कलाकार का अमर। उसी समय से सितारा देवी ने बहुत परिश्रम के साथ नृत्य का अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने चलचित्रों में अभिनय अब लगभग बन्द ही कर दिया है।

इन ६ वर्षों ही में श्रीमती सितारादेवी ने विभिन्न बड़े-बड़े नगर में जाकर अपनी अनुपम नृत्य कला प्रदर्शन से प्रशंसा प्राप्त कर ली है।

यद्यपि सितारादेवी कथाकाली, मनीपुरी, भरत नाट्यम आदि भी भालि-भाँति जानती हैं तथापि इन्होंने कत्थक नृत्य में प्रवीणता प्राप्त की है। इन्होंने समस्त योरपीय नृत्यों की भी प्रयोगात्मक शिक्षा प्राप्त की है और यह उनका प्रदर्शन भी सफलता पूर्वक कर लेती हैं।

नृत्य के अतिरिक्त सितारादेवी गायन तथा तबला वादन भी जानती हैं। इन्होंने अपने समस्त चित्रों में स्वयं ही गया है। नृत्य के साथ यह तबले की संगत भी कर लेती हैं।

श्रीमती सितारा देवी हँसमुख और प्रसन्न चित्त महिला हैं। आजकल यह प्रत्येक नगर में जाकर शास्त्रीय नृत्यों का प्रचार कर रहीं हैं।

श्रीमती सितारादेवी का कथन है कि नृत्य के विद्यार्थियों को संस्कृत और ब्रजभाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। कत्थक नृत्य सीखने के पूर्व विद्यार्थियों को राधाकृष्ण रास लीलाओं का अध्ययन करना चाहिये।

विद्यार्थियों को चाहिये कि वे तेल और मसालों की वस्तुओं का प्रयोग न करें। दूध और फल का सेवन उनके लिये लाभदायक है। उन्हें सूर्योदय के पूर्व उठना चाहिये। नित्य-क्रिया से छुट्टी पाने के पश्चात् बिना कोई चीज़ पेट में डाले "नृत्य व्यायाम" करें। इसके पश्चात् जलपान करें और फिर नृत्याभ्यास करें। नृत्याभ्यास करने के बाद तुरन्त ही हवा में नहीं निकलना चाहिये। नृत्याभ्यास नियमित रूप से करना चाहिये।

कुमारी दमयंती जोशी

भारतीय महिला नृत्य-कलाकारों में बहुत कम ऐसी महिलाएँ हुई हैं जिन्होंने पाश्चत्य देशों में अपनी कला कुशलता के लिये व्यक्तिगत प्रशंसा प्राप्त की हो। कुमारी दमयंती जोशी ने अपनी शैशवास्था से ही विदेशों में अपनी अनुपम नृत्य कला के लिये ख्याति प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था। हाल ही में शांति-परिषद की ओर से इन्होंने चीन की यात्रा की और वहाँ अनेक स्थानों पर भारतीय नृत्य कला प्रदर्शन के द्वारा वहाँ की जनता को आपने प्रभावित किया।

कुमारी दमयंती का भारतीय नृत्य कलाकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने जिन परिस्थितियों और वातावरणों में नृत्य कला का अध्ययन कर अपनी प्रतिभा एवं कला कुशलता का परिचय दिया है उसका अध्ययन भी रोचक है।

कुमारी दमयंती जोशी का जन्म एक साधारण वर्ग के परिवार में बम्बई में हुआ था। शैशवास्था ही में इनके पिता का स्वर्गवास हो गया, जिससे इनको बहुत कष्ट उठाने पड़े। नृत्य की ओर इनकी अभिरुचि बचपन से ही थी। इनकी माता ने नृत्य की शिक्षा दिलाने के लिये एक योग्य गुरु का प्रबन्ध कर दिया। थोड़े ही समय में इन्होंने नृत्य की प्रर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर ली और एक दिन जब यहाँ अपनी मित्र अभिनेत्री जुबेदा के यहा नृत्य कर रहीं थी, स्वर्गीय लीलाशोके ने इनके कला प्रदर्शन को देखकर इन्हें अपनी मंडली में सम्मिलित कर लिया। उस समय इनकी अवस्था केवल ५ वर्ष की थी।

दमयन्ती जोशी

उक्त मंडली के सहयोग से इन्होंने समस्त भारत एवं बर्मा, मलाया, सिलोन तथा योरप के समस्त प्रमुख देशों का भ्रमण किया और वहाँ अपनी कला कौशल का पूर्ण परिचय दिया।

१९३६ में बर्लिन में आयोजित अन्तराष्ट्रीय खेल-कूद के अवसर पर इन्होंने सर्व प्रथम स्थान प्राप्त किया और इनकी नृत्य कला की बहुत प्रशंसा हुई।

पाश्चात्य देशों का भ्रमण करते हुए जब उक्त मंडली भारत में लौटकर आई तब इनकी माता ने इन्हें मंडली से अलग करा लिया और उन्होंने अपनी संरक्षणता में योग्य गुरुओं द्वारा नृत्य कला की शिक्षा का प्रबन्ध किया। जिसके फल स्वरूप इन्होंने नृत्य के चार प्रमुख अंगों (कत्थक, मनीपुर, भरतनाटयम् और कथाकली) की प्रर्याप्त शिक्षा प्राप्त की।

उपर्युक्त नृत्य के प्रकारों में से कत्थक नृत्य कला का इन्होंने विशेष अध्ययन किया है। इसकी शिक्षा इन्होंने स्वर्गीय अच्छन महाराज, लच्छू महाराज आदि उच्चकोटि के नर्तकों से प्राप्त की है। उत्तरी भारत में यह अपने कत्थक नृत्य के लिये बड़े-बड़े सम्मेलनों में आमंत्रित की जाती हैं।

भारतीय नृत्य के अतिरिक्त, इन्होंने पाश्चात्य नृत्य कला में भी यथेष्ट शिक्षा प्राप्त की है और उसका प्रदर्शन भी यह सरलता पूर्वक कर सकती हैं।

हाल ही में कलाकार सांस्कृतिक परिषद् की ओर से, जिसकी यह एक प्रमुख सदस्या हैं, अपनी मंडली के साथ चीन गई थी। वहाँ पर इन्होंने कत्थक और मनीपुरी नृत्य का प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने टैगोर संगीत तथा मराठी भाव संगीत के अनुकूल स्वयं रचित दो नृत्यों का प्रदर्शन भी किया। इनके नृत्य

की लोकप्रियता के फलस्वरूप चीन में अनेक स्थानों के प्रतिनिधियों ने इनकी नृत्य-कला के कार्यक्रम को सम्पन्न करने का आग्रह किया।

दमयन्ती जी ने केवल अपनी कला का प्रदर्शन ही नहीं किया अपितु वहाँ की कलात्मक विशेषताओं का अध्ययन और अनुशीलन भी किया। इनके कथनानुसार चीन में सामूहिक नृत्य ही प्रदर्शित किये जाते हैं। केवल एक व्यक्ति द्वारा नृत्य का कोई भी नियम नहीं हैं।

कुमारी दमयन्ती जोशी का मत है कि नृत्य कला के छात्रों को चाहिये कि वे धैर्य, परिश्रम, एवं संलग्नता के साथ नृत्य कला का क्रियात्मक अभ्यास करें। सर्व प्रथम चाहे वह महिला छात्र हो अथवा पुरुष। इस बात पर उसे विशेष ध्यान देना चाहिये कि वह नृत्य के किसी भी एक क्षेत्र में कुशलता प्राप्त कर "एकै सधे सब सधे, सब साधे सब जाय" इस कथन का अर्थ समझना चाहिये। जब तक नृत्य कला में समुचित कुशलता प्राप्त न हो जाय तब तक एक ही समय में दो भिन्न नृत्य शैलियों के अध्ययन नहीं करना चाहिये।

चलचित्रों द्वारा प्रदर्शित किये गये नृत्यों का प्रभाव जन-साधारण पर बहुत बुरा पड़ता है, जिसके फलस्वरूप उनमें वासानात्मक प्रवृतियाँ जागृत होती हैं। इस दोष का निराकरण करने के लिये इनके मत से चलचित्रों में शास्त्रीय नृत्यों को स्थान देने का प्रयत्न करना चाहिये। इनका विचार है कि चलचित्रों के रंगमंच पर शास्त्रीय एवं भाव नृत्य का प्रचार और प्रसार सर्वसाधारण के लिये अत्यन्त ग्राह्य एवं वांच्छनीय होगा।

पुस्तक के विषय में

"श्री पारीक जी की "आधुनिक संगीतज्ञ" किताब मैंने पढ़कर देखी। प्रयत्न बहुत ही स्तुत्य है।

इस पुस्तक से आज के विद्यार्थी इन संगीतज्ञों की जीवनी ही नहीं जानेगें बल्कि उन्हें यह भी अनुभव होगा कि केवल परीक्षायें पास करके, डिगरियाँ ले लेने से कोई कलाकार नहीं हो जाता। इन कलाकारों ने कितनी कठिनाई से, कितनी श्रद्धा से गुरुओं से विद्या पाई और कितने परिश्रम से उसकी साधना की, यदि इन बातों को ध्यान में रखकर विद्यार्थी लाभ उठायेंगे तो पारीक जी का प्रयत्न सफल होगा।"

(ह०) वी० ए० कशालकर, "संगीत प्रवीण" मेम्बर, आल इण्डिया रेडियो आडिशन बोर्ड, ओनरेरी डायरेक्टर प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद।

"किसी कला विशेष में कुशलता प्राप्त करने के लिए उस कला के विशेषज्ञों की जीवनी का अध्ययन नितान्त आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है और हिन्दी साहित्य संसार में यह न्यूनता असह्य हो रही थी।

हर्ष है कि रवीन्द्र नाथ पारीक ने इस न्यूनता को पूर्ण करने में यथेष्ट एवं प्रशंसनीय प्रयास किया है।

यह पुस्तक पुस्तकालयों एवं संगीत कला के विद्यार्थियों के लिए भी संग्रहणीय है।

पी० एन० घोष, सेक्रेटरी, इमप्रूवमेन्ट ट्रस्ट, प्रेसीडेन्ट, लूकरगंज संगीत विद्यालय, इलाहाबाद।

"आधुनिक संगीतज्ञ" संगीत शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं वरन् संगीत में रस लेने वाली साधारण जनता के लिए भी उपयोगी है।

संगीत के सम्यक् अध्ययन एवं रसास्वादन के लिए यह आवश्यक है कि हम संगीतज्ञों की जीवन-साधना से भी अवगत हों। आशा है, श्री पारीक जी की पुस्तक इस दिशा में उचित प्रेरणा दे सकेगी।"

(ह०) जितेन्द्र सिंह, सहायक सम्पादक, 'लीडर', इलाहाबाद।

"श्री रवीन्द्र नाथ पारीक ने अमृत पत्रिका में संगीत कलाकारों पर एक लेख माला प्रारम्भ की थी। अमृत पत्रिका के पाठकों ने उसे बहुत पसन्द किया। वही अब पाठकों के सामने पुस्तक रूप में उपस्थित है। आशा है संगीत तथा कला प्रेमी उसको स्थायी सामग्री के रूप में स्वागत करेंगे।'

(ह०) पन्नालाल श्रीवास्तव, समाचार सम्पादक, अमृत पत्रिका, इलाहाबाद।

"श्री रवीन्द्र नाथ पारीक ने आधुनिक संगीतज्ञों की जीवनी लिखकर संगीत प्रेमियों तथा विद्यार्थियों का बड़ा उपकार किया है।

इस युग में जब संगीत की शिक्षा सभी स्कूलों और विश्व-विद्यालयों में दी जाने लगी है, यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी हमारे आधुनिक कलाकारों की जीवनियों से अपरिचित न रहे।"

(ह०) जस्टिस गोपाल जी मेहरोत्रा, इलाहाबाद हाई कोर्ट।

श्री रवीन्द्र नाथ पारीक संगीत शास्त्र के बड़े उत्साही विद्यार्थी तथा उदयीमान लेखक हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करके वर्तमान काल के भारतीय संगीताचार्यों का जीवन परिचय प्रस्तुत किया है।

श्री पारीक का अटूट उत्साह और परिश्रम सराहनीय है।

(ह०) शंकरदयालु श्रीवास्तव, सम्पादक, "भारत" इलाहाबाद।